नाम-संकीर्तन-महिमा

श्री हरिः

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे ! हे नाथ नारायण वासुदेव !!

श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी

सचित्र

श्री श्री चैतन्य चरितावली

(श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी द्वारा लिखित)

विश्वविख्यात ग्रन्थरत्न (पाचों भागोंमें प्रकाशित हो रहा है)

आज १५ वर्ष पूर्व ब्रह्मचारीजीद्वारा लिखित यह ग्रन्थ गीताप्रेस गोरखपुरसे प्रकाशित हो रहा था। इसकी महत्ताके कारण ही इसके २ संस्करण कुछ ही समयमें प्रकाशित हो गये थे। इसके अलावा भी इसके गुजराती, तेलगू, तामिल कई भाषाओंमें प्रकाशन हुआ। अतएव ७-८ वर्ष से अप्राप्य इस ग्रन्थको चाहने वाले महानुभाव शीघ्र ही अपनी २ प्रतियाँ सुरक्षित करवा लें। अभी इसके थोड़े ही संस्करण छप रहे हैं।

सचित्र

(भागवत चरित्र)

"सप्ताह"

श्री कृष्णभक्तोंके लिये और साप्ताहिक पारायण वालोंके लिये यह एक अपूर्व ग्रन्थ है। संस्कृत न जानने वालोंके लिये श्रीमद्भागवतके जटिल श्लोक एकदम अगम्य होते हैं। यह ग्रन्थ श्रीपूज्य ब्रह्मचारीजीकी सुरम्य सरल छन्दों बद्ध भाषामें लिखा हुआ एक अलौकिक ग्रन्थ है।

इस समय इसकी थोड़ी सी प्रतियाँ प्रकाशित होंगी, प्रेमी पाठक शीघ्र ही अपनी प्रतियाँ सुरक्षित करवा लें।

श्रीहरिः

नाम-संकीर्तन-महिमा

—:o:—

मधुर मधुर मेतन्मंगलं मंगलानाम् ।
सकलनिगम वल्लीसत्फलं चित्स्वरूपम् ॥
सकृदपि परिगीतं हेलया श्रद्धया वा ।
भृगुवर ! नरमात्रं तारयेत् रामनाम ॥

—

लेखकः—

श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

प्रकाशकः—

संकीर्तन भवन
झूसी प्रयाग

तृतीय बार २०००] सम्वत् २००६ पोस्टेज प्रथक [मूल्य ।॥)]

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१ भूमिका	क
२ संकीर्तन की बात	१
३ साधक किसे कहते हैं ?	८
४ चारों युगोंके चार साधन	१०
५ क्या नाम संकीर्तन नवीन साधन है ?	१८
६ संकीर्तनका वायुमंडल पर प्रभाव	२६
७ प्रेमनसे कीर्तन करनेसे क्या लाभ ?	३०
८ बार बार एक ही नाम क्यों लें ?	३७
९ अखंड कीर्तनसे क्या लाभ ?	४३
१० नाम संकीर्तनकी सार्वभौमिकता	४६
११ नाम संकीर्तन और सदाचार	५१
१२ नामापराध	५५
१३ नामापराधका प्रायश्चित्त	६७
१४ पुष्पांजलि	७०
१५ संकीर्तनकी सुमधुर ध्वनियाँ	७३
१६ संकीर्तनके भेद	८३
१७ पद संकीर्तन	८६

भूमिका

—:o:—

नवजलधरवर्णं चम्पकोद्भासिकर्णम् ।
विकसितनलिनास्यं विस्फुरन् मन्दहास्यम् ॥
कनकरुचिदुकूलं चारुवर्हावचूलम् ।
कमपि निखिलसारं नौमि गोपीकुमारम् ॥

यह बड़े ही सौभाग्यकी बात है, कि आज देशमें सर्वत्र श्री भगवन्नाम कीर्तनका प्रचार हो रहा है। सभी लोग भगवन्नाम महात्म्यको समझकर उसके आनन्दमें मग्न हो रहे हैं। गांव गांवमें संकीर्तन समारोह होते हुए दृष्टिगोचर हो रहे हैं। वर्ष वर्ष दो दो वर्ष व्यापी अखंड संकीर्तन यज्ञ अनेकों जगह हो चुके हैं और अनेको जगह हो रहे हैं। यह भगवान्‌की जीवों पर बड़ी ही कृपा है। कुछ भक्त द्वादशवर्षीय अखंड संकीर्तन की भी योजना कर रहे हैं। वैसे तो भगवान्‌की प्राणियों पर निरन्तर ही दया-दृष्टि होती रहती है, किन्तु इन दिनों वे अपने नामके प्रसार द्वारा जीवों पर परम अनुकम्पा प्रकट कर रहे हैं। अन्य संस्थाओंके प्रचारकी भाँति इस संकीर्तन प्रचारके विषय में कोई भी मनुष्य यह नहीं कह सकता कि यह अमुकके द्वारा प्रचार हुआ। जिनका नाम है असलमें वे ही स्वयं इसका जीवों के कल्याणार्थ-प्रचार कर रहे हैं। मनुष्य भला उनके नामका प्रचार कर भी कैसे सकता है? जब जीव इन विषय-वासना रूपी कीचड़में फंसे-फंसे परम दुःखी और आर्त हो जाते हैं तब वे प्रभु अपना वरद-हस्त बढ़ाकर जीवोंको उस कीचड़से निकालते हैं। हम विषयी हों, पामर हों, प्रपंची हों कैसे भी क्यों न हों, हैं तो उन्हींके बालक। कभी भी सही-कैसे भी क्यों न हो, अन्तमें तो उन्हें ही हमें पार लगाना होगा। सचमुच यदि जीव

सच्ची नियतसे भगवन्नामका सहारा लेले तो उसके समस्त दुःखोंका अन्त हो जायगा। उसकी अशान्ति, बेचैनी, घबराहट सदाके लिये मिट जायगी। वह अपनेको एक महान् आनन्द केसमुद्रमें क्रीड़ा करते अनुभव करेगा। जहां ईर्ष्या, द्वेष, उद्वेग, भयका नाम नहीं। यह सब भगवान्‌की शरणमें जानेसे श्रद्धा और विश्वासके साथ उनका कीर्तन करनेसे ही हो सकेगा और विशेषकर इस कल-युगमें तो दूसरा कोई सुगम, सरल, सर्वोपयोगी साधन ही नहीं।

नाम संकीर्तन करके, इतिहास पुराणोंसे नाम संकीर्तन की महिमा सुनाके भगवान्‌के सुमधुर नामों और पदोंका प्रका-श न करके जनता रूपी जनार्दनकी सेवाकी जा सकती है। इस युगमें पुस्तकों द्वारा अपने भावोंको सर्व साधारणके समीप तक पहुँचाना सुगम, लाभप्रद तथा सर्वोपयोगी है। यही सोचकर झूसी (प्रयाग) के "वर्षव्यापी अखण्ड संकीर्तन यज्ञ" द्वारा एक 'संकीर्तनकी सुमधुर ध्वनियां' नामसे पुस्तिका छपाकर बिना मूल्य वितरितकी गई थी। उसमें एकसौसे अधिक भगवन्नाम संकीर्तन की सुन्दर ध्वनियाँ थीं। इसी प्रकार गोरखपुरके वर्षव्यापी "अखंड-संकीर्तन" के द्वारा "नित्य प्रार्थना" नामक एक छोटी सी पुस्तिका वितरितकी गई थी, जिसमें नित्य प्रार्थनाके कुछ चुने हुए श्लोक और कुछ कीर्तन करने योग्य पद थे। इधर 'संकी-र्तनके, सम्बन्धमें कुछ साधारण शंकाओं पर प्रकाश डाला गया था। उन्हीं शंकाओंसे सम्बन्ध रखने वाली यह पुस्तिका है, इसमें उपर्युक्त दोनों पुस्तकोंका भी समावेश कर दिया गया है।

असलमें जो भगवान् और भगवन्नामको नहीं मानते, जो वेद पुराणोंको नहीं मानते, उनकी शंकाओंका शास्त्रीय प्रमाण देकरया महापुरुषोंके वचनोंका उद्धारण देकर समाधान नहींकिया

जासकता। तर्क द्वारा समाधान भी होता है और होना भी चाहिये। किन्तु तर्क द्वारा हुआ समाधान अन्तिम हो यह बात नहीं। आज तो तर्क द्वारा सत्य सिद्ध हुआ कल उससे भी बड़ा कोई तार्किक आवेगा तो उसे असत्य सिद्ध करदेगा। इसलिये परमार्थमें श्रद्धा पर ही बड़ा ज़ोर दिया गया है। भगवन्नाम की महिमा हम तर्क द्वारा सिद्ध नहीं कर सकते। उसकी महिमा समझनेके लिये तो हमें श्रद्धाका ही पल्ला पकड़ना होगा, विश्वासका दरवाजा खटखटाना होगा। नामकी महिमा जानना चाहते हो तो नाम पर श्रद्धा करो, नियमसे दृढ़ विश्वास के साथ नाम लिया करो, नाम संकीर्तन किया करो। थोड़े दिनोंमें तुम्हारी शंकाओंका स्वतः ही समाधान हो जायगा। तुम्हें नाममें क्या रस है, कितनी मिठास है, थोड़े दिनके सच्ची लगनके विश्वाससे स्वयं ही मालूम पड़ जायगा।

इस पुस्तिकामें आस्तिक कहलाने वाले उन लोगोंके लिये साधारण शंकाओंका समाधान है जो दूसरोंके कहने पर या स्वतः ही उनके मनमें उठा करती हैं। उनका सत्य समाधान तो कोई सच्चे भगवद् भक्त अनुभवी ही कर सकते हैं। मैं क्षुद्र बुद्धि उनके रहस्यको क्या जानूं, किन्तु मैंने गुरुजनोंसे तथा शास्त्रों द्वारा जो सुना है उसीका भाव लिख दिया है। यदि इस पुस्तिका द्वारा एकको भी भगवन्नाममें रुचि हुई या एक पुरुषका भी नाममें प्रेम होगया तो इस पुस्तकका प्रकाशन सफल हो जायगा। क्योंकि जितने भी बड़े-बड़े दान हैं, जितने भी भारी २ यज्ञ हैं, जितने भी कठोर २ तप हैं या और महन् से महन् शुभ कार्य हैं, वे सभी कार्य उस कार्यकी तुलना नहीं कर सकते जिस कार्यके द्वारा एक भी पुरुषकी वृत्ति भगवान् की ओर लगे। एक भी पुरुष जिस कार्यसे भगवानकी ओर

अग्रसर हुआ तो समझना चाहिये वह कार्य महान् है। आशा है, कि नाम प्रेमी महानुभाव इसके प्रचार और प्रसारमें यथा-शक्ति सहयोग देंगे।

भगवान्के नामोंका प्रचार हो, कीर्तनमें लोगोंका अनुराग हो और भगवद् भक्तोंकी स्मृतिमें इस क्षुद्र प्राणीका नाम भी बना रहे यही उद्देश इस पुस्तिकाके प्रकाशनमें मुख्य है। इससे दूसरा भी कोई उद्देश्य यदि हो वो उसका मुझे पता नहीं। यह पुस्तिका छाप कर बिना मूल्य भी वितरित कराई जा सकती थी किन्तु बिना मूल्यकी पुस्तिकाको न तो लोग पढ़ते हैं और न उसके प्रति आदर भाव ही रखते हैं। अतः प्रचारार्थ ऐसी चेष्टाकी गई है, कि इसका मूल्य लागतमात्र ही पड़े। यदि भगवद् भक्त इसे उपयोगी समझें और इसके प्रचार व प्रसारको लाभप्रद माने वो इसके प्रचारमें प्रयत्न करें। यह भी जरूरी नहीं कि यह अमुक ही स्थानमें छपे जो भी इसका प्रचार करना चाहें छपा सकते हैं। अंतमें उन गिरिवरधारी, बांकेविहारी, भवभयहारी, नंदनंदनके चरणोंमें यही प्रार्थना है कि जीवोंके हृदयोंमें वे अपना और अपने सुमधुर नामोंका सहज स्नेह पैदा करें। जीवोंका भगवन्नाम कीर्तनमें निष्कपट स्वाभाविक प्रेम हो।

झूसी (प्रयाग)
विजयदशमी १९९४

—प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

संकीर्तन की बात

संकीर्तन की बात सुनोगे ? लो सुनाते हैं; हां तो जरा ध्यान से सुनना, ऊब मत जाना। बातें कुछ अटपटी हैं। थक जाओ तब मुझसे कह देना मैं चुप हो जाऊँगा । यह पागलों का प्रलाप है, बुद्धिहीनों का रुदन है। क्या कहा 'प्रमाण' अजी, प्रमाण हम क्या जानें। प्रमाण तो वे ही दे सकते हैं जिन्होंने वेदशास्त्रों को सुना हो, पढ़ा हो, विचारा हो। अपने राम तो इनसे अलग हैं। जान बूझकर नहीं। अपने में इतनी योग्यता ही नहीं, वहाँ तक अपनी पहुँच ही नहीं। वह तो प्रखरबुद्धि वालों का काम है। पूर्व सुकृतों का पुण्य है, हम तो केवल—

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे,
हे नाथ नारायण वासुदेव !

इतना ही जानते हैं और इतने से ही समझते हैं कि सब शास्त्रों का निचोड़ इन्हीं में है। अपनी पहुँच तो भैया, यहीं तक है। हम योग को, ज्ञान को, ध्यान और वैराग्य को बुरा थोड़े ही बताते हैं। यह दृश्यमान जगत् एकदम मिथ्या है, हमें जो भी प्रतीति हो रही है, वह सब केवल भ्रम है, एक ब्रह्म के अतिरिक्त

दूसरा कोई भी पदार्थ नहीं है। ब्रह्म कहीं परदेश में छिपा नहीं है, मैं ही ब्रह्म हूँ। मेरे सिवाय कुछ है ही नहीं। प्रतीति जो भी है सब इन्द्रजाल है। ऐसा ज्ञान जिसे हो गया है, उसके पादपद्मों में हमारा कोटिशः प्रणाम है, किंतु हम अपनी बुद्धि को इस योग्य समझते नहीं। सब काम योग्यता से ही तो होता है।

जिनकी कुण्डलिनी जाग्रत हो चुकी है, जो दशवें द्वार में प्राणों का निरोध करते हैं, जो अजपा गायत्री के जाप में आठों याम लगे रहते हैं, जो प्राणों की गति को मन में लय कर देते हैं वे सभी वंदनीय हैं, माननीय हैं, पूजनीय हैं, श्लाघनीय और प्रशंसनीय हैं। किंतु अपने में इन सब कर्मों की योग्यता कहाँ?

तुम कहते हो बार २ चिल्लाने से क्या होता है। यह हमीं भी जानते हैं भगवान् बहरे नहीं। किंतु हम चिल्लावें नह तो क्या करें? झों झों की आवाजों से तुम्हारे कान फूटते हैं तो हमारे पास इसका क्या इलाज है? हमारे पास तो यह करताल ही एक मात्र अस्त्र है। चिल्लाना ही एक मात्र साधन है। और करें भी तो क्या करें? कुछ सूझता नहीं, उसी को रिझाना है। वह सर्वज्ञ है, घट-घट की जानने वाला है, हम उसे तंग करते होंगे तो भी हमारी नीयत बुरी नहीं है। मूर्ख आदमी किसी बड़े आदमी से बेतहज़ीबी के साथ बात करता है तो वह उन बातों का बुरा नहीं मानता; प्रत्युत उसकी सिधाई और सरलता पर हँस देता है। छोटा बच्चा मूछों को पकड़ लेता है तो कोई उससे नाराज

नहीं हो ा, क्योंकि उस की नीयत बुरी नहीं है। हम तो उसे पाना चाहते ं, हमारे प्राण उसके लिये हैं वे ही प्राणनाथ हैं, प्राणाधार हैं, प्राणेश हैं, उन्हें हम वैसे ही पुकारेंगे जैसी हमें उसने पुकारने की बुद्धि दी है।

तुम कहते हो पुकारने का भी कोई समय होता है। हर समय श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, बकते रहते हो। श्रीकृष्ण हुए या कोई आफ़त हुई, न खुद सोते हो न उन विचारे श्रीकृष्ण को ही सोने देते हो. ऐसा भी तो क्या भजन। कभी-कभी कर लिय। सो भैया इसका उत्तर यह है कि तुम रोज ही आटा, घी, चाना के बने पदार्थ खाते हो, सुबह जो दाल-भात खाया, शाम को फिर उसे ही खाते हो, सुबह जो दूध पिया था शाम को फिर उसे ही पीते हो। पानी भी दिन में कई बार पीते हो। खाना पीना हुआ या आफ़त हुई। साल में कभी एक आध बार खा पी लिया। एक ही अन्न पानी को बार २ खाने पीने में क्या फ़ायदा। तुम कहते हो यह तो शरीर को खुराक है तो हम भी कहते हैं; यह मन की खुराक है। तुम तो बुद्धिमान् हो, शास्त्रज्ञहो, समझदार हो इतना तो समझ ही सकते हो। कि शरीर की अपेक्षा मन मति लाखों गुनी अधिक है, जितनी देर शरीर से एक काम करोगे, उतनी देर में मन से करोड़ो क्या असख्यों विचार कर लोगे, मन का वेग वायुवेग से भी बढ़कर है। जब एक साधारण शरीर की खुराक दिन में २ बार हो सकती है तो मन की खुराक तो करोड़ों

अरबों क्या असंख्यों वार होनी चाहिये, किन्तु हमें मन के अनुरूप उसने समय ही नहीं दिया है। अतः जितना भी समय दिया है उसी में "श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव" रटते रहें। तुम्हीं बताओ यदि यह न रटें तो आखिर हम क्या करें। संसार को स्वप्नवत् तुम भी बताते हो, समस्त पदार्थों को नश्वर तुम भी कहते हो, चराचर में व्याप्त उस ब्रह्म को तुम भी बताते हो, तब इन नश्वर पदार्थों का चिन्तन क्यों करें, इनके सांकेतिक नामों को लेकर अपने स्मृति पटल पर उनका नक्शा क्यों खीचें? श्रीकृष्ण सत्य हैं, शुद्ध हैं, नित्य हैं, सुन्दर हैं, आनन्द स्वरूप हैं, इससे इन्कार तुम भी नहीं कर सकते। तब इनके नामों का हम उच्चारण करते हैं तो इसमें कौनसा पाप करते हैं। अब रही बेमन की बात। तुम यही कहते हो न, कि बेमन से 'हे नाथ' कहने से क्या फ़ायदा? मन तो साग-पात और फल फूलों की बातें सोचता रहता है। मन में तो धुना बुनी हो रही है अभी दूध गरम नहीं हुआ, फल नहीं आये, बेल पका या नहीं। कल के आम खट्टे थे और ऊपर से कह रहे हो "श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव" तो ऐसे कहने से तो न कहना अच्छा। किन्तु मुझे तुम्हारे इस तर्क में सचाई बहुत कम दिखाई देती है वह कैसे? वह यों कि तुम रोटी खाते समय दुनिया भर की बातें सोचते रहते हो। उस मुकदमे में क्या हुआ, वहाँ कब जाना है, उससे क्या लेना है? इन सब बातों के सोचते हुए भी यन्त्र की तरह तुम्हारा हाथ

ग्रासों को मुख में डालता जाता है और दांत उसे पीस कर गले के पास भेजते जाते हैं। यद्यपि तुम्हारा मन दूसरी जगह भटकता रहता है किन्तु क्रिया होती रहती है। अब बताओ, मन के दूसरी जगह रहने पर भी तुम्हारा पेट भर जाता है या नहीं ? यदि भर जाता हो, तो हम कहते हैं, बेमन से भी "श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव" कहने से लाभ होता ही है। फिर पहले-पहल मन लगता ही किसका है ? क्या ज्ञानी को एक ही दिन में जगत् के मिथ्यात्व, का दृढ़ ज्ञान हो जाता है ? क्या जापक का माला उठाते ही जप में मन लग जाता है ? यदि नहीं, तो बेमन से भी "श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव" रटते रटते एक दिन कभी न कभी मन भी लग जायगा, मन को भी आनन्द आ ही जायगा। हम तुमसे ही पूछते हैं,क्या तुमने पहले-पहल अपने मन से ही खुशी के साथ अन्न खाना शुरू कर दिया था ? किन्तु तुम्हें उस समय की बातों का अब क्या पता होगा। तुम तो तब बहुत ही छोटे से होगे, नन्हें बच्चे रहे होगे, माता के आश्रित रहते होगे, आज की तरह आकाश पाताल एक करने वाली प्रखर बुद्धि का तब अभाव ही होगा। तुम किसी माता से पूछो, पहले ही पहल अन्न खिलाने पर बच्चा कैसी नाक भौंह सिकोड़ता है। बच्चे को माता जबरदस्ती अन्न खिलाती है, बच्चा रोता है, कांपता है, मैं तो माता के स्तनों का ही दूध पीऊँगा अन्न को देखते ही मुंह फेर लेता है। माता भी बड़ी चतुर होती हैं।

वह उसे चुचकारती है, पुचकारती है, बातों ही बातों में उसके मुंह में अन्न ठूंस देती है । ज़हर की तरह मुंह बनाकर वह बेमन से उसे कंठ के नीचे उतार लेता है। ऐसे बेमन हठ पूर्वक खाते-खाते कुछ दिनों में उसकी अन्न खाने में रुचि होने लगती है । अब जब माता अन्न देना भूल भी जाती है तो अपने आप ही कह देता है--"अम्मा हप्पा" रुचि बढ़ते बढ़ते खाने का अभ्यास हो जाता है दोनों समय हाथ पैर धोकर बिना बुलाये थाली पर बैठ जाता है और भरी थाली का सफ़ाया कर जाता है। यह अभ्यास इतना परिपक्व हो जाता है कि मनुष्य तन्मय बन जाता है । एक दिन भी अन्न न मिले तो सभी चौकड़ी भूल जाती है एकादशी ब्रत की कोई कितनी भी प्रशंसा करे; उसे अन्न छोड़ना मरने के समान प्रतीत होता है। इसलिये सब कामों में पहिले पहिल हठ करनी पड़ती है तब रुचि होती है। रुचि होने पर अभ्यास और अभ्यास की प्ररिपक्वता का ही नाम तन्मयता है। कैसे भी सही, खाते पीते उठते बैठते "श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदे." की रट लगी रहे तो इससे बढ़कर और क्या है।

अजी ये सब बातें तो भुलाने की हैं कि हम तो मन से हमेशा "राम-राम" कहते रहते है। बेचारे मनको इतनी फ़ुरसत कहीं कि वह शारीरिक कामों को करता हुआ भी राम राम रटता रहे। ये तो सिद्ध पुरुषों की बातें हैं, ईश्वर तुल्य महापुरुष ह ऐसा करते रहे हैं, कि शरीर दूसरे कामों में फंसा रहे और मन

से श्रीकृष्ण चिंतन करते रहे। हम साधारण जीवों के लिये ऐसा असंभव है। जब जोर २ से संकीर्तन करते रहते हैं तब भी मन श्रीकृष्ण की अनुपम रूप राशि में विलीन नहीं होता, तो दूसरे २ कामों को करते हुये चिंतन हो सकेगा, इसे तुमही जानो।

अब रहा पागलपन की बात। तुम जो कहते हो, कि सिड़ी पागलों की तरह जोर-जोर से चिल्लाना, नाचना, कूदना भले आदमियों का काम नहीं है। सो भैया सच्ची बात तो यह है, कि जिसे अपनी बुद्धिमानी का अभिमान है, जिसे अपने साधनों का भरोसा है, वह भक्ति मार्ग का पथिक बनेगा ही नहीं। भक्तिमार्ग का पथिक तो अपने को तृण से भी नीचा, वृक्ष से भी अधिक सहन शील, सम्पूर्ण जीवों को सम्मान देने वाला होकर श्रीकृष्ण कीर्तन करेगा। वृन्दावन के एक बंगाली सिद्ध महात्मा का वचन है—

आपनारे हीन ज्ञान, अयोग्य बुद्धि।
तातेई हय भक्तिलाभ, तातेई सर्वसिद्धि॥

इसलिये एक बार संकोच, भय, लज्जा और संसारी मानापमान की परवाह को त्याग कर जोरों के साथ मेरे स्वर में स्वर मिला कर हाथ की ताली बजाकर बोलो तो सही।

श्री कृष्ण ! गोविन्द ! हरे ! मुरारे !
हे नाथ ! नारायण ! वासुदेव !

———

साधक किसे कहते हैं।

नाम संकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥ १

हमें इस संसार रूपी रंग भूमि में दो ही बातें दिखाई देती हैं। एक तो यह चित्र विचित्र संसार और दूसरे हम। यह संसार प्रतिक्षण परिवर्तित होता हुआ भी हमें अपरिवर्तित सा दिखाई देता है। नित नवीन होते रहने पर भी प्राचीन सा ही प्रतीत होता है। नाशवान् होने पर भी अविनाशी सा दिखाई देता है। इसी का नाम माया है। हमारी आंखों में एक ऐसा पर्दा पड़ा हुआ है कि उसके कारण हम इस जगत् नाटक के यथार्थ रूप को नहीं जान सकते। माया मोहित चित्त वाले हम इन मिथ्या पदार्थों को सत्य मान कर इस बनावटी खेल को यथार्थ समझकर इसमें अपनेपन का आरोप कर लेते हैं। और इन सब में अपना दुःख सुख समझ कर दुःखी सुखी होते हैं। हम इस खेल को तो देखते हैं किन्तु खेल में सूत्रधार की तलाश नहीं करते। क्यों कि वह पर्दे की आड़ से इस खेल को और हमको देख रहा है। हम बिना उस पर्दे को उठाये उसे देख नहीं सकते। यदि हम यवनिका को उठाकर किसी

---

१ जिन श्री हरि का नाम संकीर्तन समस्त पापों का नाश कर देता है। जिनके निमित्त किया हुआ प्रणाम सभी प्रकार के तापों को मिटा देता है उन परात्पर प्रभु के पादपद्मों में हम श्रद्धापूर्वक नमन करते हैं।

तरह भीतर जा सकें तो इस नाटक की भी यथार्थता मालूम पड़ जाय और इन नाटक के संचालन करने वाले सूत्रधार से भी अपनापन हो जाय किन्तु इस पर्दे का हटाना ही तो कठिन है। सभी सूत्रधार के समीप नहीं जा सकते। कुछ तो जानते भी नहीं कि इसका कोई पात्रों से अलग सूत्रधार भी है क्या ? कुछ समझकर भी नहीं जान सकते। और कुछ जाने की इच्छा रखने पर उधर कई कारणों से वढ़ नहीं सकते।

संसार में जितनी योनियां हैं, सब भोग योनियां हैं। कोई पुण्य को भोगने वाली हैं, जैसे देवता आदि और कुछ पाप को भोगने वाली जैसे नारकीय जीव। कीट पतंग से लेकर देवता तक सभी अपने २ भोगों को भोग रहे हैं। वे भगवत् प्राप्ति का प्रयत्न नहीं कर सकते। एक मनुष्य योनि ही ऐसी योनि बताई गई है जिसमें से मनुष्य उस अज्ञान के पर्दे को हटा कर उस सच्चे सूत्रधार प्रभु से साक्षात्कार कर सकता है। भगवत् प्राप्ति का साधन मनुष्य योनि में ही हो सकता। इसीलिये शास्त्रकारों ने मनुष्य का दूसरा नाम 'साधक' बतलाया है। जो साधनों द्वारा इस संसार से पार होकर प्रभु पादपद्मों तक पहुँच कर उनमें तन्मय हो सकता है।

भगवत् प्राप्ति के शास्त्रों में अनेक साधन हैं। देश काल और पात्र भेद से साधनों में, उनकी क्रियाओं में भेद सा भी दिखाई देता है, किन्तु समस्त साधनों का लक्ष्य एक ही है। सभी साधक उन प्रभु को प्राप्त करने के लिये ही हैं। अन्त में जाकर

सभी एक हो जाते हैं। क्योंकि उनके घर के रास्ते अनेक हैं किन्तु उनका सिंहासन एक ही है। विभिन्न मार्गों से जाकर सब उसी दरवाज़े पर पहुँचते हैं, और सभी समान रूप से सुखी होते हैं।

चारों युगों के चार साधन

कृते यद्ध्यायतो विष्णोः त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्हरिकीर्तनात् ॥१

हिंदू धर्म शास्त्रों में चार युगों की कल्पना बहुत प्राचीन है। यह संसार एक प्रकार का चक्र है। इसमें कोई वस्तु सदा एकसी नहीं रहती। जिस प्रकार चक्र घूमता रहता है उसी प्रकार यह संसार चक्र भी निरन्तर घूमता रहता है।

"नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।"

आज जो नीचा है कल वही ऊँचा है, आज जो बालक है कल वही वृद्ध है, फिर ज्यों का त्यों बालक है। संसार के सभी पदार्थ क्षणभंगुर हैं, परिवर्तनशील हैं। इन सब के भीतर श्री हरि ही सत्य हैं। श्री हरि के ही आधार पर जो कुछ दिखाई दे रहा है वह सब टिका हुआ है। जैसे माला के सब दाने अलग अलग हैं किन्तु उन सब में एक धागा ऐसा पड़ा है कि वह

१ सत्ययुग में ध्यान के द्वारा, त्रेता में भांति २ के यज्ञों द्वारा और द्वापर में विविध प्रकार की हरिचर्चा द्वारा जो फल मिलता है, वह कलियुग में हरि कीर्तन से ही प्राप्त होता है।

सब को अपने में पिरोये हुये हैं । सूत्र के निकलने पर माला का अस्तित्व ही नहीं। इसी भाँति सूत्र रूप से वे हरि इन सब प्राणियों में व्याप्त हैं। वे ही जीवों को नचा रहे हैं। हम जिन्हें बड़ा समझते हैं भगवान् के लिये वे सब एक ही से हैं। चींटी से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त उनके लिये सब बराबर है। वे सब में समान रूप से व्याप्त हैं।

चराचर प्राणियों में व्याप्त उन प्रभु को उनकी कृपा से ही हम जान सकते हैं। हम अपने निजी साधनों से उन्हें जानना चाहें तो उनका जानना ब्रह्मा के लिये भी असम्भव है। उन्होंने ही चारों युगों का निर्माण किया है। और युगों के अनुरूप स्वयं साधन भी बताये हैं। हम केवल भगवान् की आज्ञा समझकर उन साधनों में उनकी कृपा की प्रतीक्षा करते हुए निरन्तर प्रयत्न करते रहें तो वे अवश्य अपनावेंगे। क्योंकि उनकी प्रतिज्ञा यही है।

सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि ये चार युग है । युगों के अनुसार साधनों मेंभी थोड़ा अन्तर पड़ता जाता है। युग प्रवर्तक तो वे श्रीहरि ही हैं, वे अपनी प्रकृति में अधिष्ठित होकर युगों के अनुसार उत्पन्न भी होते हैं। एक बात और ध्यान रखने की है कि यह प्रकृति स्वभाव से अधोगामिनी है। सत्ययुग के बाद त्रेत का आना जरूरी है। उसी तरह त्रेता के बाद द्वापर और द्वापर के पश्चात् कलियुग, कलियुग के बाद अब धीरे २ र नहीं पढ़ेगी, क्योंकि प्रकृति में स्वयं ऊपर चढ़ने की शक्ति नहीं ।

इसका स्वभाव तो नीचे की ओर खिसकने का ही है। खिसकने की जहाँ तक सीमा होती है वहाँ तक वह नीचे ही खिसकती रहती है। जब वह एकदम नीचे पहुँच जाती है तो भगवान् स्वयं उन्हें धीरे २ नहीं—एक साथ बिलकुल ऊंचा चढ़ा देते हैं। इसीलिये घोर कलियुग के बाद, महान् पाप युग के पश्चात् एकदम शुद्ध सत्ययुग, विशुद्ध धर्मयुग आ जाता है।

सत्ययुग में लोग स्वभावतः ही धर्मपरायण, सत्यवादी लाखों वर्ष की आयु वाले होते हैं। इसीलिये उनके लिये साधन भी वैसा ही है। साधन का दूसरा नाम यज्ञ भी है। सत्ययुग के लोग ध्यान यज्ञ अधिकतर करते हैं। वे एकान्त में बैठकर भगवत् चिंतन किया करते हैं। यदि वे द्रव्यमय यज्ञ भी करते हैं तो यज्ञ के समस्त साधन द्रव्यों में ब्रह्मा का ही ध्यान करते हैं। त्रेता में लोगों की आयु कुछ कम हुई, लाख की जगह हजारों की हुई, कर्मों की प्रवृत्ति भी बढ़ी और मान-प्रतिष्ठा की भी इच्छा उत्पन्न हुई। अतः ध्यान यज्ञ के स्थान में द्रव्यमय यज्ञों का प्राबल्य हुआ। अरण्यवासी मुनियों से लेकर बड़े २ चक्रवर्ती सम्राट तक यज्ञों में ही निरत रहने लगे। हजारों वर्षों में पूरे होने वाले यज्ञ उन दिनों में होते थे। वह राजा राजा ही नहीं माना जाता था जिसने बड़े बड़े यज्ञ न किये हो। सभी ऋषि जंगल में रह कर सायं प्रातः तो हवन करते ही थे, प्रति अमावस्या और पूर्णिमा को एक विशेष यज्ञ करते थे जिसे दार्शपौर्णमास यज्ञ कहते हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामजी ने भी

हज़ारों यज्ञ किये थे। उन दिनों के यज्ञ में देवता स्वयं सशरीर अपना अपना भाग लेने आते थे। यज्ञों में सशरीर देवताओं का पधारना बड़े गौरव और महत्व की बात मानी जाती थी। उस युग में ध्यानयोगी महात्मा भी थे किन्तु प्राधान्य यज्ञ के साधकों का ही था। द्वापर में आयु और कम हुई । हज़ारों के स्थान में सैंकड़ों की आयु होने लगी । लोगों की रुचि मान, मर्यादा तथा कर्मों में अधिकाधिक होने लगी, तब उन यज्ञों में देवता सशरीर नहीं आने लगे। वे यज्ञ उपासना के रूप में परिणत हुये यज्ञ होते तो थे, किन्तु एक प्रधान देवता की स्थापना कर के समस्त कार्य उन्हीं की उपासना के निमित्त होते थे। जैसे विष्णुयाग, रुद्र, अतिरुद्र महारुद्र याग आदि २। इनमें विष्णु-भगवान् या शिव जी को प्रधान मान कर प्राधान्यरूप में उन्हीं की वैदिक तांत्रिक और पौराणिक मंत्रों से पूजा होती थी। वैसे तो समस्त देवताओं की पूजा होती है। इन यज्ञों का नाम उपासना यज्ञ है। इनमें साकार भगवान् की उपासना या परिचर्या की ही प्रधानता है, इसी हेतु धर्मराज युधिष्ठिर ने भगवान् से कहा था, "हे केशव! मैं राजसूय यज्ञ द्वारा आपकी उपासना करना चाहता हूँ।" द्वापर में भी ध्यान करने वाले तथा त्रेताकी भाँति यज्ञ करने वाले लोग होंगे किन्तु बहुत कम। वह युग उपासना युग ही माना जाता है।

इसके पश्चात् सब दोषों का घर कलियुग आया । अवतार भी युगों के अनुरूप ही हुआ करते हैं। सत्ययुग में भगवान्

कपिल का अवतार हुआ, वे ध्यान परायण, निष्कर्म तपस्या में रत, और लाखों वर्ष सशरीर विराजने वाले होते हैं। कपिल भगवान् अब भी हैं। त्रेता में भगवान् का श्रीराम रूप में अवतार होता है, वे धर्मपरायण प्रजारक्षक, मनुष्यों में श्रेष्ठ, मर्यादा पुरुषोत्तम, यज्ञयागों में तत्पर, राजा के रूप में अवतरित होते हैं। द्वापर के प्रधान अवतार वेदव्यास जी माने जाते हैं और उपासना का विस्तार पुराणों में ही अधिकतर है। अतः उपासना धर्म को पौराणिक धर्म भी कहते हैं, भगवान् वेदव्यास उपासना निरत वेदों का व्यास करने वाले और पुराणों के संग्रहीता रचयिता होते हैं। ये अवतार युगों के अन्त में प्रायः होते हैं जो पिछले युग की मर्यादा को रखते हुये अगले युग के लिये साधन बनाते हैं। इसीलिये भगवान् वेद व्यास ने कलियुग के लिये केवल हरि नाम साधन ही मुख्य बताया है। कलियुग में भगवन्नाम कीर्तन से बढ़कर सरल, सुगम, सर्वोपयोगी कोई साधन नहीं। ध्यान करने वाले ध्यान करें, जिन में राजसूय, अश्वमेधयज्ञ करने की क्षमता हो, सशरीर देवताओं को बुलाना चाहें बुलावें। विष्णुयाग, रुद्रयाग के द्वारा विधिवत् वैदिक तांत्रिक रूप से भगवान् की उपासना कर सकते हैं तो करें। उनके लिये निषेध नहीं, किन्तु ये साधन सब के लिये संभव नहीं। सार्वजनिक सुगम साधन तो संकीर्तन यज्ञ ही है। इस लिये श्रीमद्भागवत में कलियुग के साधनों के सम्बन्ध में स्पष्ट कहा गया है। "यज्ञैःसंकीर्तनायैः यजन्तीह सुमेधसा।" कलियुग

में प्रायः विद्वान लोग संकीर्तन यज्ञों द्वारा ही प्रभु की उपासना करेंगे। इसीलिये इस युग को भक्ति प्रधान युग कहा है।

"कलौ भक्तिः कलौ भक्तिः भक्त्या तुष्यति केशवः" ॥

कलियुग में केवल भक्ति ही प्रधान है। भक्ति के द्वारा ही भगवान् संतुष्ट होते हैं। "कलौ तु केवल। भक्तिः ब्रह्मसायुज्य कारिणी।" कलियुग में तो केवल भक्ति ही ब्रह्मसायुज्य को देने वाली है। एक बात और भी स्मरण रखनी चाहिये। वह यह कि ऊपर जो भी ध्यान यज्ञ, द्रव्य यज्ञ, उपासना-यज्ञ और संकीर्तन यज्ञ बता आये हैं इन सब में भगवन्नाम की ही प्रधानता है। यदि ध्यान करें, यज्ञ करें, हवन करें और भगवन्नाम को भुलादें, तो यह सब निष्फल हैं। शास्त्रों में इस बात पर स्थान २ में जोर दिया गया है कि हरि भक्ति विहीन कोई भी साधन उसी प्रकार निष्फल हैं जैसे राख में हवन करना निष्फल है। अतः भगवन्नाम कीर्तन चारों युगों में था, रहा है और रहेगा। किन्तु इतना ही अन्तर है कि तब और साधनों के साथ होता था और इस युग में केवल नाम संकीर्तन से ही काम चल जाता है। समस्त साधन नाम संकीर्तन से ही पूर्ण होते हैं। राजा बलि उस युग के साधन के अनुसार बड़ा भारी यज्ञ कर रहा था। भगवान वामन रूप से उसके यज्ञ में गये। उसने ३ पग पृथ्वी मांगी और त्रिलोक का राज्य देकर अन्त में आप भी उसके पहरेदार बन गये। यज्ञ अभी पूर्ण नहीं हुआ था। शुक्र भगवान् आचार्य थे। भगवान् ने शुक्राचार्य

से कहा, 'अब यज्ञ को विधिपूर्वक समाप्त कीजिये, यज्ञ की समाप्ति में कोई त्रुटि न होने पावे, इसका उत्तर शुक्राचार्य जी ने बड़ा सुन्दर दिया। वे बोले—

मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः।
सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसंकीर्तनं तव॥

"भगवान् कोई भी कर्म पूर्ण विधि से सांगोपांग नहीं हो सकता, उसमें कुछ न कुछ त्रुटि तो रह ही जाती है। मन्त्र तन्त्र संबंधी, देशकाल तथा और भी आवश्यकीय वस्तु संबंधी जितनी भी त्रुटियां होती हैं वे सभी आपके नाम संकीर्तन द्वारा पूरी हो जाती हैं। आपका नाम संकीर्तन ऐसा है कि वही सम्पूर्ण त्रुटियों को दूर कर सकता है। इसीलिये समस्त यज्ञों के अन्त में समस्त धार्मिक क्रियाओं ,के पश्चात् आचार्य इस श्लोक को पढ़ते हैं—

यस्य स्मृत्या च नामो यस्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्॥

जिनके नामा स्मरण करने से यज्ञ, जप, तप आदि समस्त क्रियाओं में जो न्यूनता है वह पूरी हो जाती है, उन अच्युत भगवान् की मैं वन्दना करता हूँ। इससे यही सिद्ध हुआ कि नाम सङ्कीर्तन सभी युगों में, सभी साधनों में होता है, किन्तु कलियुग में अन्य साधनों की अपेक्षा नहीं। इसलिये भगवान् व्यासदेव जोर देकर बार-बार कहते हैं—

"कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा"

चहुँ जुग चहुँ स्रुति नाम प्रभाऊ ।
कलि विशेष नहीं आन उपाऊ ॥

आप स्वयं सोचें, जहां औषधि के लिये तोले भर भी शुद्ध गौ का घी नहीं मिल सकता, शुद्ध दूध के नाम पर जहां बाज़ारों में मक्खन निकला मठा मिलता है, घी के नाम पर जानवरों की चर्बी और वनपति का कोकोजम बिकता है, अन्न में शुद्धता नहीं,जहां शासक विधर्मी, विदेशी, विलासी हैं, जहां वर्णाश्रम छिन्न भिन्न हो गया हो, जंगलों में हाथभर भी जगह बैठने को जहाँ न मिले, जहाँ के जंगलों के एक एक वृक्ष पर सरकार का अधिकार हो गया हो, वहां हम दूसरा साधन करना भी चाहें तो क्या करें। यज्ञ, याग आदि विधिहीन शास्त्र मर्यादा को छोड़कर किये जायेंगे तो उन से असुरों का बल बढ़ेगा। वेद मन्त्रों का पाठ यदि अशुद्ध, नियम विरुद्ध हुआ तो वह यजमान का घातक होता है। योग के हाल को तो योगशिक्षक गुरु ही नहीं मिलते। यदि ग्रन्थों को पढ़कर आरम्भ भी किया तो तनिक सी त्रुटि होने पर भयंकर रोग उत्पन्न हो जाता है। संसार असत्य है, नाशवान पदार्थ न कभी थे न हैं, और न होंगे, ये बातें भले ही मुंह से कहदी जांय किन्तु व्यवहार में तो ये हमारी छाती पर हमेशा चढ़े ही रहते हैं। ऐसी दशा में कलियुग में सर्वसाधारण के लिये भगवन्नाम कीर्तन ही एक ऐसा साधन है, जो हम पाप पंक में फंसे हुये प्राणियों को त्राण दे सके। यदि इस घोर कलिकाल में कोई साधन हम जैसे पापियों

को आश्रय देने वाला है तो वह भगवन्नाम ही है। इसके मानी यह नहीं कि भगवन्नाम के पीछे अपने नित्य नैमित्तिक वर्णाश्रम विहित कर्मों को एकदम छोड़ ही देना चाहिये। उन्हें भी यथाशक्ति, यथासाध्य बड़ी तत्परता से करते ही रहना चाहिये, छोड़ने न पड़ें स्वयं छूट जायँ तो यह बात दूसरी है।

क्या नाम सङ्कीर्तन नवीन साधन है ?

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥

आजकल लोग एक बात बहुत कहा करते हैं कि यह गाना बजाना और नाचना एक दम नया साधन है। महाराष्ट्र में सन्त तुकाराम, एक नाथ आदि और बंगाल में श्री चैतन्य महाप्रभुने इसे निकाला है। किन्तु यथार्थ बात ऐसी नहीं है। नाम संकीर्तन तो अत्यन्त ही प्राचीन साधन है। जिस प्रकार कलियुग केवल यही कलियुग नहीं है ऐसे असंख्यों कलियुग बीत गये। हम नित्य संकल्प में पढ़ते हैं 'अष्टाविंशतितमे कलियुगे' यह इस मन्वन्तर का अट्ठाईसवाँ कलियुग है। ये सब बातें हमें वेद और पुराणों से मालूम पड़ती हैं। वेद पुराण न हों तो हम इन बातों को समझ ही नहीं सकते। अतः वेद पुराणोंमें जिन साधनों को बताया है वे तो अत्यन्त प्राचीन अनादि माने जायँगे। वेदों में जो है उन्हीं

का विस्तार पुराणों में किया गया है। पुराणों को तो मैंने बड़े ही ध्यान से सुना है। पुराणों में तो सर्वत्र नाम की महिमा भरी पड़ी है। बल्कि मैं अपने पौराणिक ज्ञान के आधार पर यहाँ तक कहने का साहस करता हूँ कि पुराणों में भगवन्नाम संकीर्तन के सिवाय कुछ है ही नहीं। पुराण वेदों के भाष्य मात्र हैं। यदि वेदों में नाम कीर्तन न होता तो वह पुराणों में कहाँ से आता? वेदों में जो अनेक देवों की, भगवान् की स्तुति के मन्त्र हैं, वे नाम संकीर्तन नहीं तो क्या हैं? इस विषय में जिन्हें विशेष जानने की आवश्यकता हो तो वे भगवान् आद्य शंकराचार्यकृत विष्णु सहस्रनाम के भाष्य को पढ़ें। नाम माहात्म्य के कितने सुन्दर श्लोकों का उन्होंने उद्धरण किया है। पहिले युगों में अन्य साधनों के साथ स्वभावतः नाम कीर्तन होता ही था, नाम कीर्तन समस्त साधनों का एक प्रधान अंग माना जाता था। अतः उस कर्म पर ज़ोर देने के मानी ही भगवन्नाम कीर्तन पर ज़ोर देना था। इस युग में और कोई साधन तो रहे नहीं, जिस पर जोर देने से आप से आप नाम माहात्म्य समझ में आ जाता। इस युग में केवल कीर्तन ही शेष रह गया। इसीलिये अब इस पर तो विशेष ज़ोर दिया जाता है। यह कोई नवीन धर्म नहीं, किसी व्यक्ति विशेष के दिमाग़ की स्वतंत्र उपज नहीं, किसी विशेष सम्प्रदाय का मत नहीं, कोई विवाद ग्रस्त प्रश्न नहीं, इसे तो वेदों ने, पुराणों ने, शास्त्रों ने, रामायण, महाभारत ने, कबीर, रैदास, नानक आदि समस्त आधुनिक सन्तों ने भगवान् शंकर, रामा-

नुज, निम्बार्क और बल्लभआदि समस्त आचार्यचरणों ने एक स्वर से स्वीकार किया है। जो परलोक व ईश्वर दोनों को नहीं मानते, उन घोर नास्तिकों को छोड़ कर समस्त धर्मावलम्बियों ने फिर चाहे वे भारतीय-धर्म हो या भारत के बाहिर के, राम नाम महिमा को तो सभी ने माना है। ईसाई, मुसलमान, पारसी सभी ने नाम महिमा को स्वीकार किया हैं। इन धर्मों में किसी न किसी रूप में नाम जप और नाम कीर्तन होता ही है।

कीर्तन है क्या ? भगवान् के नामों का, साकार भगवान् का, भक्तों के गुणों का, गायन करना इसी का नाम कीर्तन है। कौन ऐसा सम्प्रदाय है जो उपासान के समय भगवान् के दयालुता आदि गुणों का उन के जगत पावन अनन्त नामों का कीर्तन न करता हो। अतः नाम संकीर्तन के सम्बन्ध में किसी भी आस्तिक धर्मावलम्बी को विवाद न होगा। नाम संकीर्तन तो एक अनादि प्रधान तथा मुख्य साधन हैं। कोई उपासना इस के बिना हो नहीं सकती। अन्य साधनों में यह होता है कि अमुक विधि को, अमुक धर्म को, अमुक सम्प्रदाय को छोड़ कर हमारे यहां आओ तो हम तुम्हें यह साधन बतावेंगे। किन्तु नाम संकीर्तन में ऐसा नहीं है। आप जहां हैं, जिस धर्म, जिस सम्प्रदाय, जिस जाति, जिस वर्ण में हैं वहीं रहिये। आप को धर्म परिवर्तन, जाति परिवर्तन की आवश्यकता नहीं। यदि आप वैदिक, तांत्रिक, जप, योग, नेति धोति यह सब करते हैं और इसे करना अपना धर्म समझते हैं तो इन्हें करते हुये भी आप

इस के अतिरिक्त समय में भगवान् के नाम जप कीर्तन कीजिये, आप का कल्याण होगा। आप वैदिक कर्मकाण्डी ब्राह्मण हैं, तो विधिवत कर्मकांड कीजिये और प्रेमपूर्वक भगवान् के नाम का कीर्तन भी कीजिये। और यदि आप श्वपच हैं तो अपने वंश परम्परा के पेशे को करते हुये भी प्रेम पूर्वक भगवान् के नामों का कीर्तन कीजिये। दोनों का नाम प्रेम समान है तो उस वैदिक ब्राह्मण को और श्वपच को समान गति मिलेगी। आप कबीर पन्थी, नानक पन्थी, दादू पन्थी, राधा स्वामी किसी भी सम्प्रदाय के क्यों न हों, प्रेम से भगवान् के नामों का, भगवान् के गुणों का कीर्तन कीजिये, आप शाश्वत शान्ति को प्राप्त करेंगे। ईसाई, मुसलमान, यहूदी, बौद्ध जो भी कोई भगवान् के नामका, कीर्तन अपने सम्प्रदाय के अनुसार, भगवान् के नामों का जप करेगा उसे भगवत् प्राप्ति होगी इसमें कोई सन्देह नहीं।

हम समझते थे कि जैनियों में सम्भवतया नाम कीर्तन का उतना आदर न हो किन्तु एक प्रसिद्ध जैनाचार्य ने जो हमारे पास लेख में कुछ श्लोक जैनग्रन्थों से उद्धृत करके भेजे हैं, उनसे पता चलता है कि नाम संकीर्तन के वे भी बढ़े पक्षपाती हैं। उन में से कुछ श्लोक हम यहां उद्धृत करते हैं। एक जैनाचार्य भगवान् के संबन्ध में कहते हैं—

त्वत् संस्तवन भयसन्तति सन्निबद्धम्।
पापं क्षणात् क्षयमुपैति शरीरभाजाम्॥

हे प्रभो ! जो आपके गुण संकीर्तन में लगे हुये हैं वे संसार के नाना भयों से बंधे हुये सभी पापों से छूट जाते हैं ।"
आगे जैनाचार्य कहते हैं—

आस्तां तवस्तवनमस्तसमस्तदोषम् ।
त्वत् सङ्कथापि जगतां दुरितानि हन्ति ॥

"हे प्रभो ! आपका स्वत्रन तो समस्त दोष को नाश करने में समर्थ है ही किन्तु आपका संकीर्तन भी समस्त पापों को नाश करने में समर्थ है ।"

एक दूसरे जैनाचार्य कहते हैं—

आस्तामचिन्त्य महिमा जिन संस्तवस्ते ।
नामापि पाति भवतो भवतो जगन्ति ॥

"हे प्रभो ! हे जिनपरेन्द्र, आपकी स्तुति स्तवन में अचिन्त्य माहात्म्य है किन्तु आपका नाम स्मरण भी मनुष्यों को संसार से बचाता है ।"

एक आचार्य लिखते हैं—

कल्पान्तकालपतनोद्धत वह्निकल्पम् ।
दावानलाभमुज्वलतमुज्वलमुत्स्फुलिङ्गम् ॥
विश्वं जयत्यसुमि सम्मुखमापतन्तम् ।
त्वन्नामकीर्तनजलं।शमयत्यशेषम् ॥

"हे प्रभो ! कल्पान्त में जब प्रलय होती है तो प्रलयानल से उत्पन्न हुई बड़ी बड़ी चिनगारियों वाली उद्धव अग्नि समस्त जगत् को भक्षण करने के लिये अग्रसर होती है। ऐसे भीषण

दावानल को आप का नाम संकीर्तन रूपी जल ही शमन करने के लिये समर्थ होता है"। इतना सब कहने का हमारा इतना ही अभिप्राय है कि नाम संकीर्तन कोई नवीन साधन नहीं, किसी एक सम्प्रदाय का साधन नहीं, यह प्राचीन और सर्व सम्मत साधन है।

वेद पुरान सन्त मत एहू।
सकल सुकृत फल राम सनेहू॥

नाम संकीर्तन ही इस युग के लिये सरल क्यों है? इस लिये कि इसमें अधिक उपकरणों की अपेक्षा नहीं। यदि आप अकेले हैं, एकान्त में हैं तो भगवान् की मूर्ति के सम्मुख या वैसे ही हृदय में उनका ध्यान करके बैठ जाइये। और प्रेम से ताली बजाते हुये जोर जोर से 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव' या 'रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम' या हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे' अथवा' शिव शिव शम्भो हर हर महादेव' कहिये।

जो भी भगवान् का नाम मन्त्र तुम्हें प्रिय हो, इष्ट हो उसीका प्रेम से गद्गद् कण्ठ होकर कीर्तन कीजिये। उनके लिये रोइये, आँसू बहाइये, गीत गाइये और उन्मत्त होकर नृत्य कीजिये। यदि आप गृहस्थी हैं, परिवार और बालक बच्चेदार हैं तो सायं प्रातः अपने परिवार तथा आसपास के लोगों को इकट्ठा कीजिये। यदि हो सके और सम्भव हो तो ढोलक, झांझ

मृदंग बाजा इनके साथ सब एक स्वर में कीर्तन कीजिये। बड़े प्रेम के साथ और ताल स्वर से जब एक साथ सब गद्गद् कण्ठ से कीर्तन करते हैं तो कितना आनन्द आता है पत्थर का-हृदय भी पिघल जाता है। सामूहिक कीर्तन में एक विशेष शक्ति उत्पन्न हो जाती है। सब की कातर वाणी सुन कर भगवान् फिर रह नहीं सकते। वे भी आकर उस मण्डली में बैठ जाते हैं। भगवान् ने स्वयं कहा है—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

'हे नारद मैं वैकुण्ठ में या योगियों के हृदय में बहुत नहीं रहता। वहां जाता हूं किन्तु चक्कर लगा कर खड़े होकर लौट आता हूँ। किन्तु जहां मेरे बहुत से भक्त मिल कर मेरे नाम और गुणों का गायन करते हैं वहां जाकर मैं बैठ जाता हूँ। आप मेरे कहने से महीने भर इसे करके तो देखें। किन्तु स्मरण रहे, वह गायन विषयी न हो, इन्द्रिय तृप्ति का साधन न बने, आपकी मण्डली अश्लील गायन वाली संगीत गोष्ठी न बनने पावे। उस में भगवन्नाम और भगवत् गुण-कीर्तन के सिवाय दूसरी बात न हो तो आप देखेंगे कि आपके जीवन में कितना परिवर्तन होगा। आप के बाल बच्चों का झुकाव किस प्रकार धार्मिक जीवन की ओर होने लगेगा। आप के घर का पति पत्नी और परस्पर का कलह कितना कम होगा, आपके पड़ोसी आप से कितना

प्रेम करने लगेंगे। इसमें खर्च क्या है ? समय का खर्च है। सो आप गपशप और व्यर्थ की बातों में उतना समय न खर्च करके इसी में लगाइये। स्वर्ग आपके लिये ऊपर से नीचे उतर आयेगा। देवता आपके घर में और अड़ोस-पड़ोस में ही रहने लगेंगे। सुख से आप की मित्रता हो जायगी। और शान्ति आपकी चिरसंगिनी बनने को उत्सुक होगी। आप ग़रीब हों, अमीर हों, वृद्ध हों, युवा हों, निरोगी हों, नौकर हों, सेठ साहूकार कोई भी क्यों न हों। आप मेरी इस बात को मानिये और यदि एक महीने में आपको अपने जीवन में कुछ परिवर्तन न मालूम हो तो जो काले चोर को दण्ड दिया जाता हो वह मुझे दें। किन्तु आप इसे करें, प्रेम और श्रद्धा के साथ नियम-पूर्वक बिना नागा आप इस साधन को करें। ऐसा रस आवेगा कि फिर आप इसे छोड़ेंगे ही नहीं। मेरे कई परिवार परिचित हैं जिनके घर नियम से कीर्तन होता है। उनका समस्त परिवार अन्य परिवारों की अपेक्षा शांति सुख का अनुभव कर रहा है। परिवार में परस्पर मैत्रीभाव है और एक दूसरे का आदर करते हैं।

अतः मेरी प्रार्थना है कि आप इस वेद स्मृति सम्मानित सरल सुगम साधन को, जो इस कलिकाल में विशेष उपयोगी है, उसे अपने नित्य नैमित्तिक कार्यों का प्रधान अङ्ग बना लें। इस 'पाप पयोनिधि मल मन मीना' युग में यही तो एक उपाय है।

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ।
कलि विसेषि नहिं आन उपाऊ॥

नाम संकीर्तन का वायुमण्डल पर प्रभाव

ते सन्तः सर्वभूतानां निरुपाधिकबान्धवाः।
ये नृसिंह! भवन्नाम गायन्त्युच्चैर्मुदान्विताः॥

अब यहाँ इस बात पर विचार करना है कि हम जो यह सामूहिक कीर्तन करते हैं, इससे करने वाले पुरुषों के अतिरिक्त आस-पास के लोगों को भी कुछ लाभ होता है क्या? वहाँ के वायुमण्डल में इसका कुछ प्रभाव होता है या नहीं?

इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि आस-पास के लोगों को भी इससे लाभ होता है और वायुमंडल पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। यह तो सभी जानते हैं कि हम जो भी कुछ शब्द बोलते हैं, वह वायुमंडल में फैल कर व्याप्त हो जाता है। यदि शब्दों को फैलने न दिया जाय और किसी यंत्र विशेष की सहायता से वे शब्द रश्मि घनीभूत कर लिये जायँ तो आप यहाँ बैठे बैठे विदेशों के लोगों की बातें मजे से सुन सकते हैं।

---

१ हे नृसिंह भगवान्! वे पुरुष धन्य हैं, जीवों के वे ही सच्चे बंधु और उपकारी हैं जो तुम्हारे नामों का प्रेम-पूर्वक उच्च स्वर में कीर्तन करते हैं।

बेतार के तार में और होता ही क्या है ? समाचार भेजने वाला एक यंत्र विशेष के सामने बोलता है। उसके वे शब्द ध्वनिवर्धक रश्मियों के साथ आकाशमंडल में भर जाते हैं और जहाँ-जहाँ ध्वनिआकर्षक यन्त्र लगे रहेंगे, उनमें वे सब समाचार सुनाई देंगे। इसीलिये देहली के यन्त्र के सामने एक गायक गीत गाता है और उसे घर बैठे-बैठे सभी देशों के लोग अपने यहाँ सुनते हैं। शब्दों की ही यह बात हो सो नहीं, भावों की भी ठीक यही दशा है। हम मन से जो भी सोचते हैं वह भी वायुमंडल में जाकर सर्वत्र व्याप हो जाते हैं। आधुनिक विज्ञान ने इसे सिद्ध भी कर दिया है। आप मन में किसी का ध्यान कीजिये यन्त्र में उसका चित्र आ जायगा। कहने का मतलब इतना ही है कि हम भला, बुरा, स्वार्थ, परमार्थ, सत्य, झूठ जो भी सोचते या कहते हैं, वह हमारे भीतर तक ही समाप्त नहीं हो जाता। उसका असर तमाम वायुमंडल पर पड़ता है। आकाश जिसमें सब व्याप्त है, उस आकाश को हम पोला समझते हैं यह हमारी भूल है। असल में यह पोला नहीं, लोहे और फौलाद से भी अधिक ठोस है इसके अणु परिमाणु में भाव ही भाव भरे हैं। भावों से परिपूर्ण होने पर भी जो भी मननशील प्राणी मनन करते हैं उनके वे सब विचार और बोलने वाले जीव जो बोलते हैं वे शब्द इसमें भरते ही जाते हैं। आप कहेंगे कि यह आकाश जब पहिले ही से परिपूर्ण है तो ये इतने नवीन भाव कहा समा जाते हैं ? इसका उत्तर यह है कि यह अथाह और

अगम है। जैसे समुद्र एक दम परिपूर्ण है फिर भी उसमें हजारों नदियाँ बड़े वेग के साथ जाकर मिलती हैं। उन नदियों के जल से न तो उसमें बाढ़ आती है और न वह मर्यादा का ही उल्लङ्घन करता है। उसी प्रकार अनंत शब्द अनन्त भाव इस परिपूर्ण वायु मण्डल में नित्य ही व्याप्त होते रहते हैं।

यद्यपि आकाश में अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के भाव रहते हैं। फिर भी जहाँ के लोग अधिकांश में बुरे विचार के होंगे वहाँ के वायु मण्डल में बुरे विचारों का ही प्राबल्य होगा, और जहाँ के लोग विशुद्ध भावों के होंगे वहाँ का वायु मण्डल विशुद्ध भावों से परिपूर्ण होगा यह अनुभव करके देखा गया है कि साधु महात्मा शांत पुरुषों के समीप जाते ही उनके समीपके वातावरणका ऐसा प्रभाव पड़ता है कि हमें सहज ही उस भाँति का अनुव होने लगता है। और बुरे लोगों के समीप में जाते ही अशांति के साथ चित्त की घबड़ाहट बढ़ने लगती है।

एकान्त में किन्हीं विचारों का प्राबल्य नहीं रहता। हमें विचारों में सहायता एकान्त में ही मिलती है। यदि हमारे कलुषित विचारों का ही प्रावल्य है और उनके ही बारे में हम सोचते रहते हैं तो एकान्त में हमारे कलुषित विचारों भोक्र और भी अधिक उत्तेजना मिलेगी। यदि हमारे में वे विशुद्ध धार्मिक भावों का प्रावल्य है तो एकान्त में वे और बढ़ेंगे। गणितज्ञ को एकान्त में गणित सम्बन्धी नई बातें सूझेंगी। समस्त ज्ञान, समस्त विचार, समस्त भाव वायु-

मण्डल में भरे हैं । जैसे चाहोगे वैसे विचार आने लगेंगे। आप के घर में टेलीफ़ोन का यन्त्र है, उसका सम्बन्ध सभी जगह से है, यदि आप बुरे विचार के हैं तो आप बदमाश जुआरी और वेश्याओं के नम्बर से मिलाकर उनसे बातें कर सकते हैं। उनके भावों को ले सकते हैं। यदि आप धार्मिक विचार के हैं तो उसी से नम्बर मिलाकर धार्मिक पुरुषों से सत्संग कर सकते हैं। इस सम्बन्ध का एक मनोरञ्जक दृष्टान्त है।

किसी धनलोलुप ग़रीब ने यह बात सुनी कि 'रुपयों को रुपया खींचता है'। अर्थात् रुपयों वालों के पास ही रुपये आते हैं। व्यापार में यही होता है। उसके पास एक रुपया था, उसे लेकर वह रुपयों के एक खज़ाने में गया। वहाँ लाखों रुपये थे। एक रुपये को हाथ में लेकर वह कहने लगा 'आ ! आ !! आजा !!!' वह बार २ पुकारता और रुपयों से कहता 'इन सब को खींच ले'। दैवात् उसके हाथ से वह रुपया भी गिर कर खजाने में चला गया। वह खिसयाता हुआ आया और बोला सब ठग हैं, रुपये को रुपया कहाँ खींचता है, मेरा तो गांठ का रुपया भी गया'। नेक समझदार आदमी ने यह बात सुनी। उसने कहा, भाई ठीक तो है, जिधर का आकर्षण अधिक होगा उधर ही खिंचाव भी अधिक होगा। खज़ाने में बहुत रुपये थे, उधर खिंचाव भी अधिक था, तुम्हारा रुपया खिंच गया।

इस दृष्टान्त का भाव इतना ही है कि भले बुरे वायुमण्डल का हमारे नित्य नैमित्तिक जीवन पर बड़ा असर पड़ता है। कलि-

काल में लोगों के मन की प्रवृत्ति, स्वभाव तो चोरी-बदमाशी, हिंसा और असत्य की ओर होता है। अतः वहाँ के वायुमण्डल में इन्हीं भावों का प्राबल्य होता है। ये भाव सामूहिक प्रार्थना और कीर्तन से ही हटाये जा सकते हैं। अतः जो सामूहिक प्रार्थना करते हैं वे स्वयं तो कृतार्थ होते ही हैं, अन्य लोगों के लिये विशुद्ध वातावरण निर्माण करने में भी वे बहुत बड़ी सहायता करते हैं। अतः नाम सङ्कीर्तन जितने ही एक मनके प्रेमी लोगों के साथ शांत वातावरण में किया जायगा उसका उतना ही अधिक असर होगा। जैसे जलती हुई अग्नि के वेग को जल शांत कर सकता है। घोर अन्धकार को छिन्न भिन्न करने में सूर्य भगवान् समर्थ हैं उसी प्रकार कलिकाल के जो हिंसा, मद, मत्सर आदि दोषों से जो गन्दा वातावरण बन गया है उसे मेटने में हरिनाम सङ्कीर्तन ही समर्थ हो सकता है।

शमायालं जलं वह्नेस्तमसो भास्करोदयः।
शान्त्यै कलेरघौघस्य नाम सङ्कीर्तनं हरेः॥

बे मन से कीर्तन करने से क्या लाभ ?

हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः।
अनिच्छयाऽपि संस्पर्शो दहत्येव हि पावकम्॥ १

आज कल नवीन विचार वाले लोग यह बहुत पूछते

---

१ चाहे बिना मन के भी भगवान् का स्मरण किया जाय, वह भी पापों का नाश करने वाला ही होता है। जैसे बिना इच्छाके भी अग्नि को छूवें तो वह जलावेगी ही।

हैं। "क्यों जी ! बातें तो मन से सोच रहे हैं। बम्बई कलकत्ता की, मन तो सैर कर रहा है दिल्ली के बाज़ार की और मुँह से बक रहे हो 'राम राम राम राम' तो इस राम नाम के जप से क्या लाभ ? इससे तो न करना ही अच्छा"। यह ठीक है कि मन से, चित्त लगाकर, एकाग्रता के साथ जो नाम जप और कीर्तन किया जाता है, वह विशेष लाभप्रद है। उसमें विशेष आनन्द आता है। किन्तु बिना मन के राम नाम जपना निरर्थक ही है, सो बात नहीं। उससे भी बहुत लाभ है।

इस प्रश्न को प्रायः लोग पूछा करते हैं। जेल में मेरे साथ में ऐसे ही तर्क प्रधान युवक थे। एक दिन सब मेरे पास काल कोठरी में बैठे हुये थे। उनमें जो विशेष तार्किक थे, उन्होंने पूछा 'ब्रह्मचारीजी ! यह हमारी समझमें नहीं आता कि बेमनके जो आप 'श्रीकृष्ण गोविंद हरे मुरारे, हे नाथ ! नारायण वासुदेव' कहते रहते हैं इससे क्या लाभ ? इससे भी कुछ हो सकता है ?"

उन्हें जेल में बान (रस्सी) बटने का काम दिया गया था और वे कालेज के विद्यार्थी रह चुके थे। मैंने उनसे कहा 'तुम जब रस्सी बटते हो तो क्या तुम्हारा मन बिल्कुल रस्सी बटने में ही लगा रहता है या और भी कुछ सोचता रहता है ?' उन्होंने कहा— नहीं बहुत बातें सोचता रहता है। हाथ से केवल रस्सी बटते हैं मन तो भटकता ही रहता है' अच्छा 'तो क्या ऐसी हालत में काम पूरा हो जाता है' ? उन्होंने कहा" 'हाँ, काम तो हो ही जाता है'।"

मैंने फिर पूछा—'तुम भोजन करते हो तो तुम्हारा मन बिल्कुल एकाग्र होकर भोजन में ही लगा रहता है ? उन्होंने कहा—"नहीं, इधर उधर भटकता रहता है।" मैंने पूछा—" तो क्या ऐसी हालत में तुम्हारा पेट भर जाता है ? उन्होंने कहा—हां, पेट भरने में क्या सन्देह ? रोटी मुंह की जगह नाक में कभी नहीं जाती' ।

मैंने फिर पूछा—'जब तुम कालेज में पढ़ते थे तो जब कक्षा में बैठते थे तो तुम्हारा चित्त एक दम अध्यापक के व्याख्यान में ही लग जाता था, या व्याख्यान सुनते २ मन कुछ और भी सोचने लगता था?' उन्होंने कहा, 'बहुधा मन व्याख्यान सुनते-सुनते और भी अनेक बातें सोचता था। निर्विकल्प होकर व्याख्यानमें ही चित्त तो कभी ही लगा होगा। मैंने कहा 'फिर ऐसे व्याख्यान सुनते २ भी तुम पास हो जाते थे।' उन्होंने इसे स्वीकार किया।

असली बात यह है कि बिना मन के तो मुख से कभी शब्द निकल ही नहीं सकता। मन की कई शक्ति हैं। एक मन तो संकल्प विकल्प करता ही है, अपनी दूसरी शक्ति से वह इन्द्रियों से काम कराता रहता है। बिना मन की सहायता से आंखें देख नहीं सकतीं, कान सुन नहीं सकते, वाणी बात नहीं कर सकती। मन का सहारा तो इनको भी चाहिये ही। फिर धीरे धीरे अभ्यास करने से मन का संकल्प विकल्प कम होने लगता

है। और एकाग्रता भी बे-मनसे अभ्यास करते करते बढ़ती ही है।

अभी तक हमारा चित्त इन संसारी घृणित भोगोंमें फँसा है, सोने चाँदीके ठीकरोंमें झूंठी मान प्रतिष्ठामें, क्षणिक जिह्वा स्वादमें, काम तृप्तिमें हमारा मन इतना गड़ गया है कि उसे भगवान्‌का नाम रूपी अमृत देते हैं तो जहरसा लगता है; यदि हम मनके विरुद्ध उसे लेते ही रहें तो धीरे २ जहाँ उसमें रस आने लगेगा कारण कि असली रस तो उसीमें है। रस आया कि फिर छोड़ेंगे नहीं। करते रहेंगे तो अभ्यास बढ़ेगा। अभ्यास बढ़ गया परिपक्व हो गया तो हम नामके साथ तन्मय हो जायेंगे। जिन विषयोंके लिये आज लालायित रहते हैं, राम नाममें रस आने पर वे विषय विषके समान मालूम पड़ेंगे। इस लिये पहले पहल तो हठ करनी ही पड़ेगी।

इसे तो हम नित्य देखते हैं। कोई पूर्व जन्मका संस्कारी बालक हो तो उसकी बात तो दूसरी है, नहीं तो, कौन बालक अपनी इच्छासे पहले पहल पढ़ने जाता है? अपने बाल्यकालकी एक घटना मुझे ज्यों की त्यों याद है। उस समय मेरी आयु ४ या ५ वर्षकी होगी। बाल्यकालमें जैसा चांचल्य और क्रीड़ाप्रियता बालकोंमें होनी चाहिये वैसी मुझमें थी। मेरे बड़े भाई अध्यापकीके प्रार्थी थे। गाँवकी पाठशालामें मेरे ताऊजीके लड़के पढ़ाते थे। मेरा पढ़नेमें बिलकुल चित्त नहीं लगता। बच्चोंके साथ खेलनेमें बड़ा ही आनन्द आता। एक दिन मैं अपने साथी

बालकोंके साथ खेल रहा था। मेरे बड़े भाई आये, उन्होंने मुझे जबरदस्ती गोदमें उठा लिया। मैं रोता रहा, चिल्लाता रहा, किन्तु उन्होंने एक न सुनी पाठशालामें जाकर मुझे अध्यापकजी के सामने रख दिया। उन्होंने पानी खींचनेकी एक बड़ी मोटी रस्सी मँगाई। मैं डर तो रहा था किन्तु मेरा अनुमान था कि पढ़ाने वाले मेरे भाई ही हैं। बड़े भाई साहब यहीं उपस्थित ही हैं, केवल धमकानेके लिये इन्होंने रस्सी मँगाई है। मुझे मारेंगे थोड़े ही ? किन्तु मेरा अनुमान गलत निकला। उन्होंने बड़े जोर से मेरे चूतड़ों पर रस्सीके प्रहार करने शुरू किये। मैं रोता था, चिल्लाता था, किन्तु वह एक भी नहीं सुनते। बिना रुके रस्सी खूब जोरोंके साथ मारते जाते थे। मैं बेहोश होनेवाला था। अपनी सम्पूर्ण शक्ति इकट्ठी करके मैंने कहा 'अरे निर्दयी ! कसाई ! क्या मुझे जानसे ही मार डालेगा ? मेरे चूतड़ नीले पड़ गये हैं, तुझे दया नहीं आती ? इतना सुनतेही वे हँस पड़े, मारना उन्होंने बन्द कर दिया और बोले 'यदि तू रोज आ जाया करेगा तो क्यों पिटेगा ?" यह बात मेरे मनमें बैठ गयी। उस दिनके बाद मुझे स्मरण नहीं कि पाठशाला न आनेके अपराधमें मैं कभी पिटा होऊँ। जिस गिनतीको मैं पहाड़ समझता था वह ध्यान देनेसे एक दम सरल हो गयी। रुचि और अभ्यास की इतनी दृढ़ता हो गई कि लिखने पढ़नेका मेरे जीवन के साथ ऐसा तादात्म्य सम्बन्ध हो गया कि मैं लिखने पढ़नेके बिना रह ही नहीं सकता। अपने परमार्थके मार्गमें अनुभव

करता हूँ कि यह लिखना पढ़नाभी अब मेरे लिये एक बड़ा विघ्न है किन्तु वह ऐसा जीवनमें घुल मिल गया है कि इसके छोड़नेहीके लिये अब फिर एक घोर साधना करनी पड़ेगी। फिर भी छूटेगा या नहीं इसे भगवान् ही जाने। इसलिये अनिच्छासे भी निरन्तर अभ्यास करते रहनेसे इच्छा अपने आप उत्पन्न हो जाती है। इस विचारको नाम जापकको एक दम छोड़ ही देना चाहिये कि बिना मनके जप करनेसे कुछ लाभ नहीं। आरम्भमें तो सभीको बिना मनके ही करना पड़ता है। जिसका आरम्भमें ही मन लग गया उसे साधन की आवश्यकता ही क्या ? वह तो जन्म सिद्ध है।

लोग यह दलील देते हैं 'अजी', मिश्री मिश्री कहने से ही मुँह मीठा थोड़े ही होता है जब तक मिश्री खायी न जाय। राम राम रटने से ही कोई लाभ नहीं, जब तक रामजी के--से गुण हम अपनेमें न लेआवें।'

ध्यान-पूर्वक विचारा जाय तो यह दलील ही निर्मूल है। एक तो मिश्री और नाम की कोई तुलना नहीं। मिश्री जड़पदार्थ है, उसमें स्वयं मुँहमें जानेकी शक्ति नहीं। यदि कोई देवदत्त नाम का हमारी ही तरह पुरुष है और वह दूर है तो निरन्तर देवदत्त देवदत्त चिल्लाते रहें तो देवदत्त स्वयं चलकर आसकता है। भगवन्नाम मिश्री के नाम की तरह कोई जड़ तो है नहीं। जैसे भगवान् चैतन्य हैं वैसे ही उनका नाम भी चैतन्य है। हम 'राम राम' पुकारते रहें तो हमारी तरफसे चाहे प्रेम या एकाग्रता न हो

किन्तु जिसका नाम पुकारते हैं उसमें भी तो कुछ शक्ति है। अन्धे घोड़ेमें स्वयं रास्ता देखनेकी शक्ति नहीं है, वह केवल पैरोंसे चल सकता है, किन्तु जिसका घोड़ा है जो उसका स्वामी है, उसके ऊपर चढ़ा है, वह तो रास्ता देखता है। वह अपनी शक्तिसे घोड़ेको रास्ता दिखाता हुआ ठीक मार्गसे ले जायगा। घोड़ा तो अन्धा है ही, वह यदि अपनी शक्तिसे चले तो कुएँमें गिरकर नष्ट हो ही सकता है, किन्तु उसने तो अपनी लगाम अपने स्वामीको थमादी है. वह तो सब देख सकता है। इसी तरह हम तो बे-मन के "राम राम" कहते ही हैं, इसमें चित्तको एकाग्र करके स्नेह और भक्तिके साथ जप करनेकी. तन्मय होने की शक्ति नहीं, किन्तु जिनका नाम है, वे तो पूर्ण शक्ति शाली है वे अपनी शक्तिसे हमें ठीक रास्ते पर ले जायेंगे। इसलिये शास्त्रोंका सिद्धान्त है, नाम और नामी में कोई भेद नहीं।

जो नामी है वही नाम है। भगवान् सच्चिदानन्द हैं तो उन का नाम भी सच्चिदानन्द है। आप जैसी दशामें भी हैं, नामकी शक्ति पर पूरा विश्वास करके दृढ़ताके साथ यत्न पूर्वक अभ्यास करते जाइये। सतत कीर्तन करिये। भक्तिपूर्वक नामको नमस्कार कीजिये, वे स्वयं तुम्हें बुद्धियोग देंगे। जिसके द्वारा तुम सहज ही इस संसार सागरको पार करके उनके समीप पहुँच जाओगे। उन्होंने इसे प्रतिज्ञा पूर्वक कहा है:—

संततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढ़व्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्तया नित्ययुक्ता उपासते ॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

——०——

बार बार एक ही नाम को क्यों लें ?

एकोऽपि कृष्णस्य कृतप्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यम् ।
दशाश्वमेधी पुनरेव याति कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ॥ १

नामका माहात्म्य सुननेके पश्चात् लोग कहते हैं कि "जब एक ही बार नाम लेने से संसार सागरसे पार हो जाते हैं तो फिर इतना परिश्रम क्यों करें ? एक बार नाम लेलिया छुट्टी हो गयी । फिर बार बार उसी नाम का लेनेसे क्या लाभ ?"

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि मुक्ति केवल एक ही नामसे होती है किन्तु वह एक अन्तिम हो । उसके पश्चात् पुण्य पाप वाला काम न किया जाय । आज हम नाम लेते हैं, उससे पिछले पापोंका नाश होता है । दूसरे ही क्षण पाप या पुण्य

---

१ श्रीकृष्ण भगवानको जो एक भी प्रणाम करता है उसे दस अश्वमेध यज्ञ करनेका फल मिलता है । इतने पर भी अश्वमेध करने वाले और नाम लेनेवालेमें एक अन्तर है, यज्ञ करने वाला तो पुण्य भोगकर फिर संसारमें जन्म लेता है किन्तु एक बार भगवान्को प्रणाम करने वाला फिर जन्म नहीं लेता, वह जन्म मरणसे छूट जाता है ।

करते हैं उनसे फिर भोग बनता है, कर्मोंका तो फल होगा ही। चलती चक्की में अन्न डालोगे तो उसका आटा तो बनना ही है। तो एक रामके बाद फिर शरीर ही न रहे और अन्त में मरते समय मुखसे 'राम' निकल जाय तो वह अवश्य ही मुक्ति का दावा होगा।

पुराणोंमें जितने भी दृष्टान्त हैं सब इसी तरहके हैं। अन्त समय जिसने नाम लिया वह पार हो गया। अजामिलने मरते समय नाम लिया था—लिया था पुत्र का नाम—किन्तु वह भगवान्का नाम तो था। यहाँ तो अन्त समयके नाम महत्व बताना है। अन्तिम स्वाँसका नाम होनेसे वह पुण्य पाप दोनों से मुक्त हो गया। फिर उसने न पुण्य किया न पाप। प्रभु प्रीत्यर्थ निष्काम कर्ममें लगा रहा। गृद्धने मरते समय साक्षात् राम की गोदमें सिर रख कर 'राम राम' कहते हुए तन त्यागा। मारीचने मरते समय रामको देखते हुए अन्तमें मनसे 'राम राम' कहते हुए शरीर त्यागा। गणिकाको प्राणान्तके समय महात्माने राम राम बताया और वह उसे ही कहते मुक्त हो गयी। वृहन्नारदीय पुराणमें ऐसी अनेक कथाएँ हैं, कि किसीने शिवजीके मन्दिरको झाड़ा उसी समय मर गया, किसी ने दीपक जलाया वहीं मर गया, किसीके मुखमें चरणामृत पड़ा वह मर गया। इन पुण्य कर्मोंसे उन्हें ब्रह्मलोक मिला। यद्यपि ये सब पापी थे किन्तु अन्त समय उनके भाग्यसे उनसे पुण्यप्रद काम बन पड़ा कि उस पुण्यके प्रभावसे उन्हें ब्रह्मलोक

की प्राप्ति हुई। नृग कितने धर्मात्मा राजा थे। किन्तु अन्त समय, मृत्यु के समय उनसे एक अपराध भूलमें बन गया। एक श्रोत्रिय प्रतिग्रह रहित ब्राह्मणकी गौ भूलसे दूसरे ब्राह्मणको दे दी। राजा इसी चिन्तामें मग्न थे, मृत्यु आगयी। अन्तमें ऐसी चिन्ता होनेके कारण उन्हें गिरगिट बनना पड़ा। सारांश यह है कि एक ही नामहो; किन्तु वह अन्तिम हो।

अब आप कहेंगे, जब यही बात है तो मरते समय ही कहलेंगे, अभीसे उसमें सर क्यों खपावें, जब मरेंगे तब राम नाम कहलेंगे। बात तो ठीक है और यही अभीष्ट भी है किन्तु हमें पता क्या कि कब मृत्यु होगी? मृत्युकी कोई निश्चित तिथि तो है नहीं। उसे कहींसे आना तो है नहीं। वह तो जन्म के साथ ही पैदा हुई है। पता नहीं कब हमें निगल जाय। सोते सोते ही खाजाय। जलमें डुबकी ले रहे हैं कि वहाँ दबोच दे, तब वहाँ तुम कैसे नाम ले सकते हो? फिर अन्तमें भी तो वही बातें स्मरण आती हैं जिसका जीवन भर अभ्यास किया हो। विद्यार्थीकी परीक्षा एक दिन होती है। किन्तु उसके लिये वह तैयारी वर्षों से करता है। परिश्रमके डरसे वह कहे कि 'अजी अभीसे परिश्रम करनेसे क्या लाभ? जिस दिन परीक्षा होगी उसी दिन लिख देंगे, तो वह कभी उत्तीर्ण नहीं हो सकता। परीक्षामें तो वही लिख सकेगा जिसने पहिलेसे अभ्यास किया होगा।

समय तो एक बार ही आता है, किन्तु उसके लिये हमें

सचेष्ट हर समय रहना पड़ता है। कोई जंगल है, उसमें बड़ा भयंकर सिंह रहता है, हमें उसमें रहना है. तो हमारे अभिभावक कहते हैं—'देखो सावधान रहना वहाँ सिंह है, जब आवे तो उसे फौरन गोली से मार देना। आप उनकी बात मानकर पिस्तौल ले जाते हैं, और हर समय उसे पास रखते हैं, सोते समयभी उसे नहीं छोड़ते उसका कामतो ठीक उसी समय पड़ेगा जब सिंह आजाय किन्तु उसे रखते हैं सदा साथ। क्योंकि साथ रहेगी तभी काम देगी। इसी तरह 'राम राम'रटते रहो, राम नाम को छोड़ो नहीं, मृत्यु के समय भी वह हमारे कण्ठमें रहा तो बेड़ा पार है। उस समय बात, पित्त, कफसे गला भर जाता है। बहुत पहलेसे खूब अभ्यास न होगा तो अन्तमें राम नाम आ ही नहीं सकता।

"प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः
कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते।"

अभ्यासका ही तो जीवनपर बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसका मुझे स्वयं अनुभव है। मेरा मन एक क्षणको भी स्थिर नहीं होता। बे-मनसे हो मैं 'श्रीकृष्ण गोविंद हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव' कहता रहता हूँ। मेरे पेटके भीतर अंतड़ी में फोड़ा (अपेण्डीसाइड) हुआ। वह पक गया, पक कर मवाद पड़ गया, किन्तु जीवन शेष था उसका विष ऊपर नहीं चढ़ा। उसके जब दौरे होते थे, तब कितना असह्य दर्द

होता था वह लेखनीसे व्यक्त नहीं किया जा सकता। डाक्टरोंकी राय हुई पेटको चिरवा कर अंतड़ीका उतना भाग जब तक काटा न जायगा तब तक अच्छा न होगा। इस विषयके विशेषज्ञ देहलीके डाक्टर जोशीके यहाँ पेट चिरवानेका निश्चय हुआ। वह जीवन मरणका प्रश्न था। अपने सभी प्रेमी इकट्ठे थे। अस्पतालमें स्वतन्त्र स्थान लेकर सब साथ रहते, कथा कीर्तन नियमसे चलता। वहाँ ऐसे रोगों के बहुत से रोगी थे। वे चीड़फाड़के बड़े भारी डाक्टर थे और केवल चीड़फाड़ ही करते थे। मेरे जैसे रोगके भी कई थे। मैंने पूछना आरम्भ किया कि चीरनेके बाद रोगीकी क्या दशा होती है? सबने बताया दवा सुंघानेसे बेहोश होजाते हैं। ३,४ दिनमें होश आता है, सभी बेहोशीमें बुरी-बुरी गालियाँ देते हैं। और जाने क्या ऊट पटांग बातें करते हैं। मुझे चिरवानेका तो भय नहीं था किन्तु इसका बड़ा भय था। कभी बोले नहीं, ये सभी साथके लड़के हैं। बेहोशीमें कोई बुरी बात निकल गई तो यह क्या सोचेंगे। अपने मनका पाप था, प्रतिष्ठाका ध्यान था। चीर फाड़के समय तक मैं मौन रहा। रोग भयङ्कर था। लगभग २॥ घण्टे में चीर फाड़ समाप्त हुई। पेटको सीनेके बाद डाक्टर ने कहा १०० में से ६० बचनेकी आशा नहीं।

लगभग २--३ घंटे बाद मुझे बिलकुल होश हो गया। सामने एक लड़का बैठा था, वह पूछ रहा था, 'कबतक ये बेहोश रहेंगे ?' वही मैंने पहला शब्द सुना। मैं हँस पड़ा। उसी समय।

मैंने पूँछा, "मैंने बेहोशीमें क्या कहा ?" उन्होंने कहा, "आप बड़े जोरसे 'हे नाथ नारायण वासुदेव' चिल्लाये, और कोई बात नहीं कही।" उस दिनसे मेरा विश्वास और भी बढ़ गया कि यदि वे-मनसे भी कहते रहें, तो संभव है कि मृत्यु समय भी मुंहसे वही निकल जाय तो इतने दिनकी मिहनत सफल हो जाय।

इस पर यह कहा जा सकता हैं कि--इसमें विशेषताकी कौनसी बात है जो लोग प्रायः गाली देते थे, उनके मुखमें से बेहोशीमें गाली निकली तुम 'हे नाथ नरायण वासुदेव' कहते थे तुम्हारे मुखसे यह निकला। इससे यह तो सिद्ध नहीं हुआ कि इस कहनेसे कुछ लाभ हो। किन्तु हमारा अभिप्राय यहाँ लाभ और हानि दिखानेका तो था नहीं। हमें तो यहाँ यही दिखाना था कि शास्त्रोंका भी सिद्धांत है, अन्त में मरनेकी बेहोशी में, मुखसे राम नाम निकले तो उससे कल्याण होता है। इसे हमें तर्कसे तो सिद्ध करना नहीं कि ऐसा क्यों होता है? शास्त्रोंमें कहा है, शास्त्रोंके बचनों पर हमें विश्वास है, इसीलिये होता है। किन्तु हमें तो यहाँ यही दिखाना है कि अन्तमें मरते समय राम नाम तभी आ सकेगा जब पहिलेसे पूरा अभ्यास हो।

हे प्रभो! हमें आप ऐसा वरदान दीजिये कि आपके नामोंको सोते, जागते, उठते, वैठते, सदा रटते रहें। आपके चरणारविन्दों में हमारा यह मानसहंस अभी इसी क्षण घुस जाय। मनमें से आप

कभी हटें ही नहीं। मनमें आपका रूप, जीभ पर आपका नाम सदा नाचता रहे। मरते समय तो प्रभो! जब पैरोंसे लेकर सिर तक सभी नसोंमें बलपूर्वक प्राण खिंचने लगेंगे, और जब त्रिदोष होनेसे वात, पित्त, कफके प्रकोपसे कंठ रुक जायगा और घरघराहट होने लगेगी तब आपका नाम स्मरण चिंतन भला कैसे हो सकता है?

कृष्ण त्वदीयपदपंकजपंजरांते ।
अद्यैव मे विशतु मानसराजहंसः॥
प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः ।
कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते ॥

—:०:—

अखण्ड कीर्तन से क्या लाभ?

अहोरात्रं हरेर्नाम कीर्तयन्ति च ये नराः ।
कुर्वन्त हरिपूजां वा न कलिर्बाधते च तान्॥ ×

एक प्रश्न यह उठता है कि ये जो अखंड कीर्तन होते हैं इनसे क्या लाभ? जिन्हें करना हो अपने घर चुपचाप कीर्तन करें

बात ठीक ही है, करने वाले अपने घरमें करें ही। उन्हें तो

× जो मनुष्य दिन रात्रि अखण्ड भगवान्के नामका कीर्तन करते हैं और सानन्द हरि पूजा भी करते हैं तो उन्हें कलिकालकी बाधा नहीं सताती है।

कोई रोकता नहीं और न ऐसा ही कोई आग्रह है कि अपने घर चुपचाप शान्तिसे कीर्तन करके अखण्ड ही करो। किन्तु अखण्ड कीर्तनसे लाभ बहुत हैं। हम पहिले ही बता चुके हैं कि इस आकाशमें अच्छे बुरे भाव ठूंस २ कर भरे हैं। इन भावोंको हटाया तभी जा सकता है जब वहाँके वायुमंडलमें बिना विश्रामके सतत कीर्तन होता रहे। अखण्ड कीर्तनमें होता क्या है? बारी-बारीसे लोग कीर्तन करते हैं। यदि शक्ति हो तो एक या अनेक आदमी आहोरात्रि बिना विश्रामके कीर्तन करते रहें, किन्तु ऐसा बहुत कठिन है। अतः कुछ आदमी मिलकर नियम बना लेते हैं कि अमुक समय तक ये लोग करेंगे और फिर वे करेंगे। एकके पश्चात् दूसरी टोली और दूसरीके पश्चात् तीसरी, ऐसे ही बराबर लोग आते जाते हैं। कीर्तनका तार टूटने नहीं पाता, वह अविच्छिन्न रूपसे दिन रात्रि बराबर चलता ही रहता है। करने वालोंको तो लाभ होना ही चाहिये, और होता ही है किन्तु जो आस पासके लोग हैं इससे उन्हें भी लाभ होता है। जिनके कानमें ध्वनि पड़ती है वे तो श्रवण सुख का अनुभव करते हैं, तो सुन भी नहीं सकते उन्हें वहाँ के वातावरणसे ही संकीर्तनके परिमाणुओंसे सद्भाव और पारमार्थिक विचार मिलते हैं। जैसे एक मन्दिरमें एक पुरुष-बैठकर पूजा करता है और धूप जलाता है, उससे देवता तो प्रसन्न होते ही हैं किन्तु उस मन्दिरमें जो बैठे हुए हैं उन्हें भी उतनी ही सुगन्धि मिलती है जितनी उस जलाने वाले को मिल रही है।

पूजा का फल चाहे उस अकेलेको ही मिले, किन्तु सुगन्धिका फल मन्दिरके सभी लोगोंको तथा उसके आस पास वाले लोगोंको भी दूरीके अनुसार थोड़ा बहुत अवश्य ही मिलेगा। इसी प्रकार अखण्ड कीर्तन की दिगन्तव्यापी ध्वनिसे जो एक प्रकार की सुगन्धि निकलती है उससे जान में, अनजानमें जो वहाँ रहते हैं, वहाँ साँस लेते हैं उन्हें अवश्य ही पारमार्थिक लाभ होता है।

अखण्ड कीर्तनसे पारमार्थिक वातावरण तो तैयार होता ही है, एक विशेष शक्ति भी उत्पन्न होती है। जैसे किसी सभामें सभी लोग यदि देशभक्ति और उत्साहकी बातें सुनें तो कैसे भी दुर्बल मनका आदमी क्यों न हो, एक बार तो उसके हृदय में भी जोश आही जाता है। अखंड कीर्तन वायुमंडलमें बिखरे हुए रोगके सूक्ष्म कीटाणुओंको हटाता है, बुरे विचार के परमाणुओं को छिन्न भिन्न करता है और वहाँ का वातावरण शांत, गम्भीर और भक्तिमय बनाता है। यह अपनी आँखों देखा निजी अनुभव है कि जिस स्थानपर साल दो साल या महीने दो महीने भी अखंड कीर्तन होता है वहाँकेबालक बिना कहे खेल-खेलमें कीर्तन करने लगते हैं। माता बहिनें अपने आप ही विवाह और पर्वोंमें गन्दे गीत न गाकर सुन्दर स्वरमें भगवान् के नामों का कीर्तन करने लगती हैं। चरवाहे गाय, भैंस चराते हुए, हलवाहे हल चलाते हुए मुख से राम राम नाम का उच्चारण करते रहते हैं। अखंड कीर्तन से केवल समीप रहने वाले

ही मनुष्य जो पहिले साधु-ब्राह्मणको प्रणाम नहीं करते थे, कभी भगवन्नाम और भगवत् पूजा नहीं करते थे, वे स्वतः भगवान्‌की ओर बढ़ने लगते हैं। किन्तु यह तो मानी हुई बात है कि सभों पर सभीका एक समान असर नहीं पड़ता। सूर्य की किरणें समान रूपसे सब वस्तुओंपर पड़ती हैं, किन्तु काँच के ऊपर पड़नेसे उस पर बहुत अधिक चमकती हैं। मिट्टी के बर्तनोंपर उससे कम और पत्थरकी चीजों पर उससे भी कम। इसी प्रकार पूर्व जन्मके संस्कारानुसार जिसका जितना ही जल्दी अंतःकरण शुद्ध होगा उसपर उतना ही जल्दी असर भी पड़ेगा। असर पड़ता सभी पर है। अतः बन पड़े तो सप्ताह में, महीनेमें, कभी अहोरात्रका, सप्ताहका, अथवा महीने भर या अधिकका अखण्ड कीर्तन करनेका प्रबन्ध करनेका उद्योग जरूर करना चाहिये।

येऽहर्निशं जगद्धातुर्वासुदेवस्य कीर्तनम्।
कुर्वन्ति तान् नरव्याघ्रान् न कलिर्बाधते नरान्॥

—:o:—

नाम सङ्कीर्तन की सार्वभौमिकता

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्*॥

---

* अकाम हों, सकाम हों या मोक्षकी कामना वाले हों, सभीको सभी काम सिद्धिके लिये तीव्र भक्तियोगके द्वारा परम पुरुष परमात्मा का ही स्मरण कीतन करना चाहिये।

बहुतसे कर्म ऐसे हैं जो सकाम ही किये जाते हैं। जैसे पुत्रेष्टियज्ञ आदि कई यज्ञ हैं, जो किसी विशेष कामनाके अनुष्ठानके ही निमित्त सम्पन्न होते हैं। बहुतसे निष्काम कर्म भी हैं। बहुतसे कर्म ऐसे हैं जिनके लिये नियम है, ऐसे देशमें करना चाहिये। तीर्थ स्थान हो, नदी तट हो, शुद्ध भूमि हो। अमुक स्थानमें नहीं करना चाहिये। श्मशान न हो, ऊसर भूमि न हो आदि आदि। बहुतसे कर्म किसी विशेष समयमें ही किये जाते हैं। प्रातःकालीन सन्ध्या सूर्योदयसे पूर्व हो, सायंसन्ध्या सूर्य रहते रहते हो जाय। संक्रान्ति, पूर्णिमा, उत्तरायण, व्यतिपात आदिका विचार किया जाता है। अमुक दिन करनेसे यह दोष है, अमुक ग्रह होनेसे कर्म निष्फल जाता है आदि आदि बहुत सी बातें हैं। कुछ कर्मोंमें पात्रताका बड़ा विचार किया जाता है। द्विज ही अमुक कर्म को कर सकता है, उसके रज वीर्यमें संकरता न हो, यज्ञोपवीतधारी ही इसे कर सकते हैं दूसरे करेंगे तो पतित होंगे। स्त्री, शूद्र, वेदबहिष्कृत, वर्णसंकरोंका उसमें अधिकार नहीं। किन्तु एक हरि नाम संकीर्तन ही ऐसा साधन है जिसमें सकाम, अकाम, देश, काल और पात्रताका भेद भाव नहीं। समस्त कामनाओंके लिये, सभी समय, सभी लोग हरिनाम संकीर्तन करके कृतार्थ हो सकते हैं।

यदि आपको धनकी इच्छा है तो भगवान्का भजन कीजिये, यदि आपको पुत्रकी इच्छा है तो प्रेमसे हरिनाम

कीर्तन कीजिए। प्रभु सभी प्रकारकी इच्छायें पूर्ण करेंगे। वे कल्पतरु हैं। आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी चारों प्रकार के भक्तोंको वे सुगति देते हैं। यद्यपि ये धन, पुत्र, ऐश्वर्य, मान, प्रतिष्ठा क्षणिक हैं। दुःखके हेतु हैं किन्तु जिनका मन सकाम है, उन्हें आप लाख समझाइये, उनके मनमें यह बात न बैठेगी। वे भगवान्‌को न चाहकर, धन या पुत्रको ही चाहेंगे। यदि वे धन वा पुत्रकी इच्छा भगवान्‌से न करके किसी व्यक्तिविशेषसे करते हैं, धनकी इच्छासे नीचोंकी सेवा करते हैं, वेईमानीसे धन पैदा करना चाहते हैं, किसी को धोखा देकर धन हड़पना चाहते हैं तो वे कामी हैं, नीच हैं, उनकी सद्गति नहीं होती। यदि धन और पुत्रकी इच्छा होने पर भी वे किसी मनुष्य विशेषकी आशा न कर के भगवान्‌के सामने अपनी कामना प्रकट करते हैं, उस कामनासे भगवान्‌का भजन करते हैं तो वे अर्थार्थी भक्त हैं और भगवान् उनकी वह कामना पूरी करते हैं। कामना पूर्तिके दो तरीके हैं, एक तो यह कि भगवान् उनकी मनो-वांछित वस्तुको पहिले दे देते हैं। सांसारिक वस्तु तो अन्त में दुःखदायी होती है, उसके परिणामको देखकर उसे उससे विराग होता है और फिर वह उस वस्तुको छोड़कर भगवान् के भजनमें लग जाता है या कामनासे भजन करते करते ही भगवान् उसकी बुद्धिको बदल देते हैं। उसे फिर भगवान् को छोड़कर कोई चीज अच्छी लगती ही नहीं। इसी तरह

जो दुखी होकर अपने दुःखको मेटनेके लिये किसी मनुष्यकी इच्छा करते हैं वे दीन हैं, लोकनिंद्य और परमुखापेक्षी हैं। किन्तु जो दुःख पड़नेपर किसी मनुष्यका आश्रय न लेकर द्रौपदीकी भाँति भगवान्से ही उसे मेटनेके लिये प्रार्थना करते हैं वे आर्तभक्त हैं। जिज्ञासु और ज्ञानी भी केवल भगवान्का आश्रय लेकर निरन्तर उनका ही भजन करते रहते हैं। इस प्रकार भगवान्का भजन—हरिका कीर्तन—कामना वाले पुरुषभी कर सकते हैं और निष्काम भी कर सकते हैं। इसमें यह नियम नहीं कि निष्काम होकर ही भगवत् कीर्तनका अधिकार हो सकता है। भगवान्को अपना समझो। उन्हें सब कामनाओंका दाता कल्पतरु मान लो। फिर चाहे उनसे धन माँगो या स्वयं उन्हें माँगलो। धन माँगने वालेको वे धन भी देंगे और अपनेकोभी दे देंगे, उन्हें जो माँगेगा उसके तो चरणोंकी धूलिको वे माथे पर चढ़ावेंगे। किन्तु एक मात्र उनका ही होकर उनका ही विश्वास करके उनसे ही माँगना चाहिये। यदि भक्त कहलाकर तुमने किसी मनुष्यका आश्रय लिया तो भक्तिमें वट्टा आ गया।

मोर दास कहाय नर आसा।
करहिँ तो कहहु कवन विश्वासा।

इसी प्रकार नाम संकीर्तनमें देश और कालका नियम नहीं। श्मशानमें शवको ले जाते समय भी आप बड़े प्रेम से कीर्तन कर सकते हैं। यज्ञ मंडपमें भी संकीर्तनकी

४

सुमधुर ध्वनिसे होता, उद्गाता, यजमान और पुरोहितको सुखास्वादन करा सकते हैं। समय और पवित्रताका भी नियम नहीं। शौच जाते समय, मलमूत्र त्यागते समय, खाते और पीते समय, चलते, उठते बैठते, सोते, लेटेलेटे, जम्हाई लेते हर समय हर हालतमें आप कीर्तन कर सकते हैं। भगवन्नाम कीर्तनमें देश कालका नियम ही नहीं। यों पवित्र देश में पवित्रताके साथ किया जाय तब तो और उत्तम है ही, सोनेमें सुगन्धकी तरह है। किन्तु ऐसे ही करो, यह नियम नहीं। इसीलिये व्यासजीने कहा है:—

> न देशनियमो राजन् ! न कालनियमस्तथा।
> विद्यते नात्र संदेहो विष्णोर्नामानुकीर्तने॥

इसी तरह पात्रताके लिये भी है। वेदोंको सब नहीं पढ़ सकते। गायत्री मंत्र तथा अन्य वैदिक मंत्रोंका सब को अधिकार नहीं। योगभी सब नहीं कर सकते। इन सब कामोंके लिये बड़ी पवित्रताकी जरूरत है। फिर जिन साधनों को एक सम्प्रदाय वाले करते हैं उन्हें दूसरे सम्प्रदाय वाले नहीं कर सकते। किन्तु भगवन्नाम कीर्तन एक ऐसा साधन है जिसे सभी कर सकते हैं। इसी लिये कलिकालमें संकीर्तन ही एक सर्वोपयोगी सार्वभौमिक साधन है। इसमें संघशक्तिसे ही काम चल सकता है। कलिकालके लिये एक ऐसे साधनकी जरूरत होती है जिसे अपना अपना वर्णाश्रम विहित कर्म करते हुएभी सभी समान रूपसे कर सकें। उसमें यह भेद भाव न

हो कि इसे शूद्र करते हैं तो वेदपाठी ब्राह्मण न करें या इसे वेद-बहिष्कृत म्लेच्छ अन्त्यज न करें। सबके लिये समान रूपसे सद्गति देने वाला सरल, सुगम, सर्वोपकारी, सर्वोत्तम, सर्वोपकरण रहित भगवन्नाम सङ्कीर्तन ही है। इसीलिये बृहन्नारदीय पुराणमें महर्षि सनकने नारद जीसे कहा है:—

वेदमार्गवहिष्ठानां जनानां पाप कर्मणाम् ।
मनः शुद्धिविहीनानां हरिनाम्नैव निष्कृतिः ॥

—o—

नाम संकीर्तन और सदाचार

आचारप्रभवो धर्मः धर्मस्य प्रभुरच्युतः ।
आश्रमाचारयुक्तेन पूजितः सर्वदा हरिः ॥ ❀

एक प्रश्न लोग बहुत करते हैं कि "अमुक आदमी कितने दिनसे राम राम कहता है, किन्तु हम उसके जीवनमें कोई परिवर्तन नहीं देखते। वह बात-बात पर भूठ बोलता है, पैसे पैसे पर बेईमानी करता है, आचरणभी उसका ऐसा विशुद्ध नहीं। इसका क्या कारण है? जब एक नामका शास्त्रोंमें इतना अधिक माहात्म्य बताया गया है तो वह तो न जाने कितने दिनोंसे कितने नाम ले रहा है। उसके पाप क्यों नहीं

❀धर्म आचारसे उत्पन्न हुआ है, धर्मके स्वामी श्रीहरि हैं। अपने अपने वर्णाश्रमके आचारसे युक्त होकर ही भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये।

कटे ? यह तो निश्चय ही है कि ऐसे कर्म बिना पापमय अन्तः-करणके हो नहीं सकते। राम नामका उनके ऊपर असर क्यों नहीं होता" यह प्रश्न बहुत विचारणीय है। इसके लिये अति संक्षेपमें हमें कर्मबन्धनोंको समझ लेना चाहिये। कर्म तीन प्रकार के हैं, संचित प्रारब्ध और क्रियमाण। हम लोग पुन-र्जन्मको मानने वाले हैं। और हमारा विश्वास है कि हमारे साथ अनंत जन्मोंके संस्कार लगे हुये हैं। भौतिक शरीर के नष्ट होनेपरभी सूक्ष्म शरीरके साथ कर्मबन्धन रहते ही हैं। हमने करोड़ों अरबों जन्मोंमें जो कर्म किये हैं वे सब इकट्ठे होते जाते हैं, इस सञ्चित कोषमेंसे केवल एक जन्मके भोगके लिये जोकर्म शरीरके लिये किये जाते हैं उन्हें प्रारब्ध कहते हैं। और जो हम रोज़ रोज़ करते हैं उन्हें क्रियमाण कर्म कहते हैं, ये संचित कर्मोंमें जाकर मिलते जाते हैं। पुण्य कर्मोंका भी फल भोगना पड़ता है और पाप कर्मोंका भी। महाप्रलयमें भी कर्मराशि नष्ट नहीं होती। वह जीवोंके साथ लगी रहती है। हमारा एक साल देवताओंका एक दिन है। ऐसे ही ३६० दिनोंसे उन का एक साल है। ऐसे ही देवताओंके बारह हजार चतु-र्युगी का ब्रह्माजी का एक दिन है। ऐसे ३६० दिनोंसे उन का एक साल है। अपने वर्षों से एक ब्रह्मा १०० वर्ष रहते हैं। फिर महाप्रलय होती है, तब दूसरे ब्रह्मा आते हैं। चाहे कितने ही ब्रह्मा बदल जाँय, कितनीभी महाप्रलय हो जाँय

किन्तु कर्मबन्धन लगे ही रहते हैं, जब तक मोक्ष न हो, भगवत् प्राप्ति न हो। इसी विषयमें बृहन्नारदीय पुराणमें एक दृष्टांत है। देवराज इन्द्रने बृहस्पतिजीसे सृष्टिके आदिके सम्बन्धमें कुछ प्रश्न किया। इस पर बृहस्पति जीने कहा, "तुम्हारी स्वर्गलोककी सभाका जो अमुक सभापति है वह ब्रह्म लोकसे आया है, चलो उससे पूछें। इन्द्रजी और देवगुरू दोनों उस ब्राह्मणके पास गये। कुशल क्षेमके पश्चात् प्रश्न छिड़ा। ब्राह्मणने कहा, ब्रह्मन्! मैं करोड़ों वर्ष ब्रह्मलोकमें रहा। मेरे सामने कई ब्रह्मा बदल गये। अब मैं करोड़ों ही वर्ष यहाँ रहूँगा। यह मेरे एक पुण्यका फल है। पूर्व जन्ममें मैं गृद्ध था, अनजानमें मैंने भगवान्के मन्दिरकी परिक्रमाकी थी उसी फलसे मुझे इतने दिन ब्रह्मलोक और इन्द्रलोक आदि प्राप्त हुये हैं। फिर मैं मृत्युलोकमें जाऊँगा।

इतना सब कहनेका अभिप्राय यही है कि कर्मराशि अनन्त है। नाम यद्यपि अनन्त पापोंको नाश करनेमें समर्थ है, फिर भी पाप नाश होते—होते ही होंगे। नाम भी एक पुण्य कर्म है, यदि वह मृत्युके समीप भी आजाय तो कर्म बन्धनोंको मेट कर वही नाम मोक्षकाभी हेतु होजाता है। इसलिए नाम साधन भी है और साध्य भी। जो लोग नाम लेते हुए भी पाप कर्ममें लगे हुए हैं, उनका पुण्य तो बढ़ रहा है किन्तु साथ ही पाप भी बढ़ता जाता है। नाम लेनेसे भी लोगोंको भ्रम हो जाता है। नामका

माहात्म्य सुनकर लोग समझते हैं, जब नाममें इतनी शक्ति है, नाम लेनेसे इतने पाप नष्ट हो जाते हैं, तो हम खूब पाप क्यों न करें, नाम लेनेसे वे नष्ट हो जायेंगे। इस प्रकार वे सदाचार को छोड़कर नाम लेते हैं और नामका आश्रय लेकर पाप करते हैं। यह बड़ा भारी अपराध है। नामकी आड़ लेकर पाप करना इतना घोर अपराध है कि उसकी किसी भी प्रायश्चित्त से निष्कृति नहीं हो सकती। नाम तो कल्पतरु है, जो जिस वासनासे नाम लेता है सबसे पहिले नाम उसकी उसी वासना को पूरा करता है। जो कामवासनासे, धनवासनासे नाम लेते हैं उनकी वह वासना भी पूरी होती है। नाम तो कैसे भी लिया जाय लाभदायक तो है ही, पापोंको तो नष्ट करेगा ही, किन्तु पूर्ण लाभ तभी होगा जब सदाचार पूर्वक नामापराधोंको बचाते हुये नाम-जप कीर्तन किया जाय। भगवान्‌का पापहारी नाम लेने पर भी पाप कर्मोंमें प्रवृत्ति हो, भगवान्‌से अधिक पाप कर्म अच्छे लगें, तो समझना चाहिये हमारे अनन्त जन्मों के घोर पाप हैं और वे पाप तभी नष्ट होंगे जब हम सतत नाम स्मरण करते रहें। नाम स्मरणमें नामापराधोंको बचानेकी शक्तिभर चेष्टा करनी चाहिये। नामापराध १० हैं। उनका विवरण संक्षेपमें आगे दिया जाता है।

नामापराध

सन्निन्दाऽसति नाम वैभवकथा श्रीशेशयोर्भेदधी-
रश्रद्धा श्रुतिशास्त्रदैशिकगिरां नाम्न्यर्थवादभ्रमः ॥
नामास्तीति निषिद्धवृत्तिविहितत्यागो हि धर्मान्तरैः ।
साम्यं नाम्नि जपे शिवस्य च हरेर्नामापराधाः दश ॥*

नामापराध कौन कौनसे हैं ? इस प्रश्नका उत्तर देते हैं। नाम-जपकीर्तनमें सर्व प्रथम अपराध तो सज्जन पुरुषोंकी निन्दा करना है। निन्दा तो वैसे किसीकीभी न करनी चाहिये। जो पुरुष पापीकीभी निन्दा करता है तो उस पापीके पापका चौथाई भाग निन्दा करने वालेको मिल जाता है। इस विषय में एक दृष्टान्त है कि कोई राजा बड़ा कीर्त्तिलोलुप था, सब काम कीर्त्तिके ही लिये करता था। सबसे अपनी प्रशंसा सुनता और उसे सुनकर बड़ा प्रसन्न होता। आत्मप्रशंसा में श्लाघा रखनाभी एक पाप है। एक देवदूतने आकर बताया कि पहले शुभ कर्मोंके लिये स्वर्गमें एक बड़ा सुन्दर महल बना था, अब उसमें लीद ही लीद भर गई

---

*नोट—सत्पुरुषोंकी निन्दा, नाम माहात्म्यको नहीं सुनने वाले को सुनाना, शिव और विष्णुमें भेद बुद्धि, श्रुति शास्त्र और गुरुजनों के वाक्योंमें अश्रद्धा, नाममें अर्थवाद का भ्रम, नाम का आश्रय लेकर पाप करना, दूसरे पुण्य कर्मोंसे नाम की समता करना, ये हरि और हर के नामजप सम्बन्धी १० नामापराध हैं।

है। यदि अच्छे काम करते हुये भी लोग तुम्हारी निन्दा करें तो लीद साफ़ हो जाय। राजाने ऐसा ही किया। आत्मश्लाघा सुननेकी जगह वह अपनी निन्दा सुनने लगा। सब लोग उसे बुरा-भला कहने थे। थोड़े दिनोंमें देवदूतने बताया कि सब लीद तो साफ़ हो गयी, एक कोनेमें थोड़ी शेष है। अमुक लोहार किसीकी निन्दा नहीं करता यदि वह तुम्हारी निन्दा करे तो वह भी साफ हो जाय। राजा वेष बदल कर उसके यहाँ गये, और बातोंमें लगाकर उससे राजाकी निन्दा करानी चाही। वह समझ गया, राजाको भी पहिचान गया, बोला--"राजन्! आप समझते होंगे कि मैं मूर्ख हूँ, यदि मैं राजाकी निन्दा करूँ तो वह कोनेमेंकी लीद मुझे खानी होगी। मैं कभी भी निन्दा नहीं करूँगा।" कहनेका अभिप्राय यही है कि दूसरोंकी निन्दा करना दूसरोंकी लीदको खानेके समान है। फिर जिन सज्जनों ने नामकी इतनी भारी महिमा बताई है उनकी निन्दा भला नाम कैसे सहन कर सकता है?

"स यैः ख्यातिं यातः कथमुपसहेत् तद्विगर्हाम्।"

अतः नामानुरागी जापक और कीर्तनकारको सबसे पहले तो सबकी और विशेषकर नामानुरागी भक्तोंकी निन्दा से बचना चाहिये।

दूसरा नामापराध है अनिच्छुकके सामने नाम माहात्म्य का कथन करना। आप नामका जोर शोरसे संकीर्तन कीजिये, जिसे अच्छा लगेगा स्वयं करेगा, जो तुमसे नामका माहात्म्य

पूछे उसे यथाशक्ति वेदशास्त्र और सन्तोंके अनुभवके आधार पर नाम माहात्म्य सुनाइये। किन्तु जो सुनना ही नहीं चाहता, भगवन्नासकी बातें सुनते ही चला जाता है, या झगड़ा करने लगता है तो उसके सामने जबरदस्ती नाम माहात्म्य कहना, सुननेकी इच्छा न होने पर उसे हठपूर्वक सुनाना यह भी एक नामापराध है। किन्तु एक बातका स्मरण रहे कि यह परपक्षके लोगोंके लिये है। जो आपके आश्रित हैं, पाल्य और पोष्य हैं जिनकी उन्नति और शिक्षाका भार-आपके ऊपर है ऐसे शिष्य और पुत्रोंके विषयमें यह लागू नहीं। उन्हेंभी प्रेम पूर्वक धीरे २ नामका माहात्म्य बड़े स्नेहके साथ सुनाओ, समझाओ। किंतु जो धर्मध्वजी बन कर शास्त्रार्थ करते फिरते हैं वह नाम माहात्म्यके विरुद्ध है। नाम जापकको वाद विवाद करना एक बड़ा अपराध है। एक कथा है कि जीव गोस्वामीजीने शास्त्रार्थमें किसी दिग्विजयी पण्डितको हरा दिया, इसके पूर्व इनके दोनों चाचाओं—"श्रीपाद रूप तथा सनातन गोस्वामियों-ने उस पण्डितको विजय पत्र बिना शास्त्रार्थके ही लिख दिया था। जबइन दोनों गोस्वामिचरणों ने सुना कि जीवजी ने उस पण्डितको शास्त्रार्थमें परास्त किया है तो उन्होंने इन्हें बहुत डाँटा। इन्होंने कहा—"इस संसारी मान प्रतिष्ठामें क्या रखा है? ये तो संसारी विषय हैं और संसारी विषयोंसे तो हम हारे ही हुए हैं॥

कहनेका मतलब यही है कि नाम अपना प्रचार कर लेगा। वह जड़ तो है नहीं, चैतन्य है। तुम अपने स्वान्तःसुखनिमित्त

उसका माहात्म्य वर्णन करना चाहते हो तो करो।

श्री शिवजीके और विष्णुजीके नामोंमें भेद बुद्धि रखना, किसीके नामको किसीसे छोटा बनाकर दूसरे नाममें अश्रद्धा रखना यहभी एक नामापराध है। हमतो जी श्री वैष्णव हैं हम शिवजीका नाम नहीं लेते'। 'हम कृष्ण २ नहीं कहेंगे, राम २ कहेंगे।' हमें शंकरजीके नाम कीर्तनसे क्या प्रयोजन ? ऐसी बातें भेद बुद्धि वाले लोग ही करते हैं। यह कौन कहता है कि तुम अपने इष्टदेवकी पूजा मत करो। तुम्हारा इष्ट सबसे बड़ा है यह तो निर्विवाद ही है। इष्टके मानें ही जो हमें सबसे रुचिकर हो। किन्तु एक तुम्हें रुचिकर है, दूसरोंमें तुम्हें घृणा है, यह कहाँका न्याय है ? तुम यह समझो कि ये सब हमारे इष्टके ही नाम हैं। इन सबरूपों में हमारे इष्ट ही बिराजते हैं। श्री शिवसहस्रनाम कई हैं, उन सबमें शिवके नाम ही नाम हैं। भगवान्के नारायण, हरि आदि समस्त नाम शिव सहस्रनामोंमें शिवजीके अनेकों नामोंमें आ गये हैं। अब इनमें परस्पर भेदभाव करना एक भारी अपराध है। पुराणों में इस बात पर इतना अधिक जोर दिया गया है कि इतना शायद ही किसी दूसरे पर दिया गया हो। जब हमारे इष्ट ही सब रूपोंमें हैं तो भेदभाव कैसा ? विरोध किस बातका ?

'निज प्रभुमय देखहिं जगत,का सन करहिं विरोध'।

बृहन्नारदीय पुराणमें इस बात पर बहुत ही जोर दिया गया है। जहाँ भगवान्के नारायण, वासुदेव, हरि आदि नामोंका

कीर्तन बताया है उसके नीचे ही हरि, शंकर मृड आदि नामों काभी कीर्तन है। एक पुरानी ही कथा है, कि शिवजीके विवाह में जैसे बंश परम्पराका वर्णन होता है वैसे ही वर्णन करनेके लिये पूछा गया। तुम्हारे पिताका क्या नाम है ? शिवजीने कहा 'ब्रह्मा जी' फिर पूछा, 'पितामहका क्या नाम है ?' बताया, 'विष्णु जी'। फिर पूछा, 'तीन पीढ़ी बतानी पड़ती है, प्रपितामहका नाम और बताइये। तब तो शिवजी बोले, "प्रपितामह तो सबके हमी हैं।" विष्णु भगवान्से पूछा, "तुम्हारे पिता कौन हैं ?" उन्होंने कहा 'शिवजी' शिवजीसे पूछा तुम्हारे पिता कौन हैं ?' वे बोले 'विष्णु भगवान्'। इन सबका यही अभिप्राय है कि सब एक ही हैं। इनमें भेद भाव के लिये स्थान ही नहीं। शिवजी दिन रात्रि राम २ रटते हैं और रामजी प्रेमपूर्वक नियमसे शिवजीकी आराधना करते हैं। इसीलिये भगवान्ने भगवान् रामेश्वरजीकी स्थापना करते हुये स्पष्ट सबके सामने अपना सच्चा सिद्धान्त सुना दिया है :—

शिवद्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहु मोंहि न भावा।
शंकर विमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मतिथोरी॥
शंकर प्रिय मम द्रोही, शिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिँ कलप भरि, घोर नरक में वास॥

श्रुति, वेद वचनों में, शास्त्र, स्मृति, पुराणोंमें अश्रद्धा प्रकट करना ये भी नामके तीन पृथक् २ अपराध माने गये हैं।

वेद तो हमारे ज्ञानके आदि भण्डार हैं, इनसे ही तो हमने नाम महिमा प्राप्तकी है, उसके अन्य वचनोंमें अश्रद्धा प्रकट करना बड़ा अपराध है, इसी प्रकार शास्त्र पुराण भी वही बात कहते हैं जो वेद भगवान् आज्ञा करते हैं। सब वचन सबके लिये उपयोगी नहीं होते। और वे सबके लिये कहे भी नहीं गये हैं। उनमें परस्पर में कुछ बाहिरी विरोध सा प्रतीत होने पर सभीको त्याज्य बताया यह हमारी बुद्धिकी क्षुद्रता है। हम अपनी तपस्या और विशुद्ध संस्कारसे रहित क्षुद्रबुद्धिसे जो सोचते हैं वही ठीक है और जो बात हमारी सीमित बुद्धि में नहीं भरती वह मिथ्या ही है। इसे किसके बल पर कह सकते हैं? श्री भगवान् और उनके अनन्त गुण तो बुद्धिके परे तीनों गुणोंसे आगेकी बात है, उन्हें तुम अपनी त्रिगुणमयी बुद्धिके द्वारा मापना चाहते हो तो कैसे ठीक होगा। अतः वेद शास्त्रोंपर, आप्त वचनोंपर श्रद्धा करो।

शास्त्रोंमें तीनों प्रकारके शब्द आते हैं, रोचक, भयानक और यथार्थ। रोचक तो ऐसे जैसे अमुकके सर पर किसी चिड़िया ने बीट कर दी उससे तिलक सा बन गया। उसके कारण उसे कितने करोड़ वर्ष विष्णुलोकमें रहना पड़ा। यह रोचक वचन है, इसका इतना ही अभिप्राय है कि तिलक लगाना बहुत पुण्य का काम है। भयानक, जैसे अमुक आदमी ने भूलसे अमावस्याके दिन एक दतौन तोड़ ली, उसे

कितने करोड़ वर्ष नरकोंकी यातना सहनी पड़ी! यह भया-नक वाक्य है। इसका यह अभिप्राय है कि अमावस्याको कभी भी पेड़को न काटना चाहिये। यथार्थ तो यथार्थ है ही। जैसे प्रातः सायं सन्ध्या करनी चाहिये। माता पिताकी आज्ञा माननी चाहिये आदि।

शास्त्रकारोंका कहना है कि तुम भगवन्नाममें अर्थवादका आरोप मत करो। अजी अजामिल पुत्रके वहाने अन्त में नाम लेनेसे भला कैसे तर सकता है? उम्र भर निषिद्ध कर्म करने वाली गणिका अन्तमें राम नाम कहनेसे कैसे मुक्त हो सकती है? पशुयोनि गज मनसे स्तुति करने पर कैसे तर सकता है? इत्यादि २। भैया! तुम इस संसार चक्रको क्या जानते हो। किस जीवके कब कौन से कर्म, कौनसे संस्कार जागृत हो जाते हैं। जिस अजामिल, गज, गणिका, गीधका नाम व्यास, बाल्मीकिसे लेकर आज तकके समस्त कवि बड़ी श्रद्धाके साथ लेते आ रहे हैं, क्या यह कोई एक जन्मके साधारण कर्मका फल है? ये तो भगवान्‌के अनुग्रहसृष्टिके नित्य जीव हैं। पता नहीं किस जीवपर भगवान्‌की कब कृपा हो जाय। शास्त्रोंका कहना है, इन वचनोंमें अर्थवादका भ्रम करो ही मत। भगवन्नाम में वह शक्ति है कि वह सब कुछ कर सकता है। शिव सनकादिकी तो बात ही क्या, साक्षात् श्रीरामजी भी अपने नामकी पूरी महिमा स्वयं नहीं कह सकते। यदि पूरा कह

सकें तो वह असीय कैसे होगा ?

कहहुँ कहां लगि नाम बड़ाई ।

राम न सकहिं नाम गुण गाई ॥

नामकी आड़ लेकर पाप करना यह सबसे बड़ा नामापराध है । प्रायः लोग कहते हैं, "नाम में तो अनन्त शक्ति है" ।

"नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः ।

तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः" ॥

नाम में पापोंके नष्ट करनेमी इतनी भारी शक्ति है कि उतना पाप यदि घोर पापी हठपूर्वक भी करना चाहे तो नहीं कर सकता । इसके माने यह थोड़े ही हैं कि नामकी आड़ लेकर जान बूझ कर पाप करने चाहियें । वैसे यदि कोई दुःखी हो, संकट में हो तो बड़े लोग उसे क्षमा कर देते हैं, किन्तु उनका ही नाम लेकर लोगोंको ठगे, लोगों में अविश्वास पैदा करे तो उस पर वे अधि अप्रसन्न होते हैं । नाम में पापोंको दाह करनेकी शक्ति है किन्तु वह उन्हीं पापोंकी जो विषयोंका आश्रय लेकर अत—जान में किये गये हों । इसलिये जब नामका आश्रय पकड़ लिया है तब यथासाध्य पापोंसे बचनेकी चेष्टा करते रहना चाहिये । जिस अन्तःकरण में नामका माहात्म्य प्रवेश कर गया, जिस मन में यत्किञ्चित् भगवान् भक्ति हो गई, उस व्यक्तिसे पाप बन ही नहीं सकते । उस

से फिर दुर्गुण होंगे ही कैसे ?

कुछ आधुनिक समाजोंके अनुयायियों में इस समय एक बड़ी घातक प्रवृत्ति चल पड़ी है। उनका विचार है कि हमारे पन्थके महन्तोंने जो साधन बताये हैं उन्हें, करते जायँ, और उनकी यथासाध्य खाने पहननेकी चीज़ोंसे थोड़ी बहुत सेवा करते जायँ, फिर चाहे हम जो भी पाप करें, लोगोंसे घूस लें, ठगें, झूठ बोलें, धोखा दें हमें पाप न लगेगा। यह बड़ा भारी भ्रम है। वे सीधा नरकका रास्ता अपने लिये तैयार कर रहे हैं और अपने लोभी गुरुको भी उधर ही घसीट ले जानेकी चेष्टा कर रहे हैं।

"लोभी गुरु लालची चेला।
दोनों नरकमें हेलम हेला" ॥

कोई भी पारमार्थिक साधन क्यों न हो, उन में सबसे पहले यम, नियम, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरविश्वास इन गुणोंकी परम आवश्यकता है। अतः नामका आश्रय लेकर जो पाप किया जाता है, वह अन्य पापोंसे बहुत भयंकर होता है। अतः इसे बचाकर ही नाम जप कीर्तन करना चाहिये। प्रायः लोग कह देते हैं, "अजी! हमने तो एक नामका ही आश्रय पकड़ लिया है, फिर वैदिक संस्कार, श्राद्ध-तर्पण, सन्ध्या-बन्दन क्यों करें? भगवन्नाम सबसे बड़ा है, इसमें सब आ जाते हैं। इसे छोड़ कर दूसरेका आश्रय लेना अनन्यताके विरुद्ध है"। बात तो

सच है, भगवन्नाममें प्रेम होना ही सब साधनोंका फल है, और इसीके लिये सब कर्म किये जाते हैं। किन्तु आरम्भमें ही वे कर्म छोड़ दिये जाँय जोकि भगवन्नाममें प्रेम उत्पन्न करनेमें सहायक हैं तो इसका फल यह होगाकि हम भ्रष्ट हो सकते हैं। वायु थोड़ी अग्निको बुझा देता है और बहुत अग्निको प्रज्वलित करता है। अभी जब तक नाम प्रेमका अंकुर भी उत्पन्न नहीं हुआ तभी तक यदि उसमें पानी देना, गोड़ना छोड़ दिया जाय और काँटोंकी बाड़ हटा दी जाय तो पहले अंकुर उत्पन्न होगा ही नहीं, होगा भी तो उचित आहार और रक्षाके अभाव में कुम्हला जायगा। अतः जब तक सर्वतोभावेन भगवत् आश्रय ही न हो जाय, जब तक संसारको एक दम भूल ही न जायँ, तब तक वेदाचार और कुलाचार आदिका बड़ी त्परतासे पालन करना चाहिये। अपने वर्णाश्रम धर्मके वनुरूप कर्मोंको तब तक न छोड़ना चाहिये, जब तक भगवत् अलीला कथा श्रवणमें पूरी श्रद्धा न हो जाय।

"तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत् यावतः।
मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते"॥

जब हम माता, पिता, कुल, परिवार, शरीरकी चिन्ता करते हैं और सब संसारी काम करते हैं, दूसरोंके गुण दोषोंकी भी समीक्षा करते हैं, तब तक यदि हम अपने स्वकर्मोंका त्याग करते हैं तो मानों अपराध करते हैं। अनन्य प्रेम होने पर कर्म छोड़ने नहीं पड़ते, स्वयं ही छूट जाते हैं।

बहुधा जब हमें किसीकी उपमा देनी होती है तो उससे बड़ी या अच्छी चीजकी उपमा देते हैं। जैसे इस कूपका जल तो अमृत तुल्य है। जलसे अमृत बहुत सुन्दर, बहुत स्वादिष्ट, बहुत गुणकारी होता होगा। यहाँ जलको अमृत की उपमा देनेसे इतना ही तात्पर्य है कि जल बहुत सुन्दर है। अमुक पुण्य करो तो गंगा स्नानका फल मिलेगा। अमुक व्रत करोगे तो अश्वमेध यज्ञका फल मिलेगा। इसे साम्य कहते हैं। भगवन्नामकी दूसरे धर्म कार्योंके साथ समता करना यह भी एक नामापराध है। समता तो तभीकी जा सकती है जब उस वस्तुसे कोई बड़ा हो या बराबरका हो। भगवन्नामसे बड़ा तो कोई है ही नहीं। न उसके बराबरका ही कोई दूसरा धर्म है, फिर उसके साथ दूसरे कर्मोंकी समानता करना अनधिकार चेष्टा ही है। जिसके नामका महत् यश है जो बड़ोंसे भी बड़ा है, जो फलोंकाभी फल है, पुण्योंकाभी पुण्य है, समस्त धर्म जिसके आश्रय पर टिके हुये हैं, उसकी किसी दूसरेके साथ तुलनाकी ही कैसे जा सकती है ? इसीलिये शास्त्रोंमें कहा है:—

"गोकोटिदानं ग्रहणेषु काशी प्रयागगङ्गायुतकल्पवासः ।
यज्ञायुतंमेरुसुवर्णं दानं गोविन्दनाम्ना न तदापि तुल्यम् ॥

सबसे बढ़कर गोदानका माहात्म्य काशीजी में है, यदि ग्रहणके समय गोदान किया जाय तो वह अक्षय हो जाता है। उस काशीमें चन्द्रग्रहणके समय करोड़ों गौओंका दान

किया जाय तो उस पुण्यका कुछ ठिकाना ही नहीं, वह सबसे बड़ा दान है। प्रयागमें स्नान करनेका ही बड़ा माहात्म्य है, यदि उस प्रयागमें गङ्गा जमुनाके मध्यमें उमर भर कल्पवास करे तो फिर उस पुण्यका तो कुछ कहना ही नहीं। ऐसे कल्प वास यदि १० हजार वर्ष किये जाँय तो वह पुण्य अक्षय है, उसका कभी क्षय नहीं होता। यज्ञ तो भगवान्का स्वरूप ही है, 'यज्ञो वै विष्णुः "ऐसे यज्ञ यदि दस हजार किये जाँय तो सब से अधिक पुण्य कर्म ये ही माने जायेंगे। सुवर्णकी चोरी करना जैसे महापाप है उसी प्रकार सुवर्णका दान करना भी महा पुण्य है। सुमेरु पर्वत सुवर्णका ही है और उसीके चारों ओर चारों दिग्पालोंके लोक हैं, सबके ऊपर ब्रह्माजीकी पुरी है, जगत्में सुमेरु ही सबसे बड़ा है। उस सुमेरुके बराबर सुवर्ण का दान कर दिया जाय तो इस पुण्यका तो कोई अनुमान भी नहीं कर सकता। ऊपर जितने भी पुण्यप्रद कर्म गिनाये गये हैं ये सब मिलकर भी भगवान्के नामके समान नहीं हो सकते। भगवन्नामका माहात्म्य इन सबसे भी बढ़कर है। यह कर्म चाहे कितने भी सुखप्रद क्यों न हों, किन्तु इनसे संसार बंधन नहीं छूट सकता। कितने भी करोड़ वर्ष तक सही, ब्रह्मलोक आदि अनन्त सुखोंके लोकोंमें रहकर फिर आवागमनमें आना पड़ता है। यदि भगवान्का नाम मरते समय मुखमेंसे निकल जाय तो संसार बन्धन सदाके लिये छूट सकता है। ऐसे नामकी समता भला किसीसे करें भी तो कैसे करें ? यदि हम

अपनी अज्ञता से करते हैं तो घोर नामापराध करते हैं। अतः इन दश नामापराधों को बचाकर ही नाम जप कीर्तन करना चाहिये। तभी नाम का यथार्थ फल मिलेगा।

—:o:—

नामापराध का प्रायश्चित्त ॥

यह एक बड़ी भारी कठिनता हुई। नाम जप कीर्तन फिर सरल कहाँ रहा! यह तो महा कठिन हुआ ब्रह्महत्या सुरापान आदि महापातकों का तो प्रायश्चित्त कहा है किन्तु नामापराध का कोई प्रायश्चित्त ही नहीं। वह यज्ञ, याग, उपवास, तप आदि से भी दूर नहीं होता। तो यह तो बड़ी भय की बात हुई। पग पग पर हमसे नामापराध बननेकी सम्भावना है। जान बूझ कर अपराध न करने की चेष्टाकी जा सकती है। नामका आश्रय लेकर पाप करने की प्रवृत्तिको मनसे हटानेका उद्योग हो सकता है, किन्तु ये जो १० नामापराध बताये हैं, इनका कोई प्रायश्चित्त न होनेसे हमारा इतना नाम जप कीर्तन निष्फल ही जायगा तो यह तो किया कराया सब चौपट ही हुआ।

बात तो ऐसी ही है, नामजपको लोग जितना सरल समझते हैं, उतना सरल है नहीं। लोग सरल उसे कहते हैं, कि हम यथेच्छ दिल खोलकर पाप भी करते रहें और परमार्थ के पथिक भी बन जाँय। ऐसा किसी साधन में नहीं होने का। परमार्थ

की ओर अग्रसर होनेवालेको पाप कर्मोंको छोड़ना ही होगा भगवान् वो दैव हैं, उन्हें वो दैवी सम्पत्तिके गुणके लोग ही अधिक प्रिय होंगे। फिर भी भूलमें अनजानमें जो नामापराध बन जाते हैं उनका प्रायश्चित्त, तप, उपवास आदि से वो हो नहीं सकता क्योंकि नामका अपराध है और नाम सबसे बड़ा है। बड़ोंके अपराधको बड़े ही क्षमा भी कर सकते हैं, छोटों की शक्ति नहीं कि उसे क्षमा करदें। इसलिये भूलमें हुये नामापराधका प्रायश्चित्त बताया है। वह यह है—

नामापराधयुक्तानां नामान्येव हरन्त्यघम्।
अविश्रान्तप्रयुक्तानि, तान्येवसेवार्थकराणि हि॥

भूलसे जिन से नामापराध बन गया हो और पीछे उन्हें मालूम पड़ जाय तो उसके लिये मन में खूब पश्चात्ताप करें। नामके अपराधको नाम ही मेट सकता है। अतः बिना विश्राम के सतत नामका जप कीर्तन करें। अविच्छिन्न नाम जप कीर्तन करने से नामापराध भी नष्ट हो सकते हैं।

नामका आश्रय लेनेकी जरूरत है। नामके आश्रय लेने वालेसे पहले तो कोई अपराध होते नहीं, यदि पूर्वसंस्कारानुसार कोई भूलमें बन भी जाते हैं तो निरन्तर नामके जप स्मरण में ऐसी प्रवल शक्ति है कि वह उसका नाश कर ही देता है। अतः जैसे भी बने नामस्मरण करना चाहिये। खाते, पीते, उठते, बैठते, चलते, फिरते, जोर २ से हो, मन २ में हो, कैसे भी क्यों न हो, नाम का जप स्मरण अवश्य ही होना चाहिये।

आप नाम को अपने जीवन का ध्रुव लक्ष्य बनावें। समस्त विघ्न, समस्त अपराध आपही आप नष्ट हो जायेंगे। यह आग्रह नहीं कि भगवान् का आप अमुक ही नाम लीजिये। भगवान के समस्त नामोंमें पाप दहन करने की समान शक्ति है, फिर भी साधकको जो प्रिय हो उसीका जप करना चाहिये। शेष सभी नामोंका विरोध रहित कीर्तन करना चाहिये। जिनका नाम संकीर्तन करने से समस्त पापोंका नाश होता है, उन परात्पर प्रभुके पादपद्मोंमें प्रणाम करते हुये हम अपने इस क्षुद्र वक्तव्यको समाप्त करते हैं।

नामसंकीर्तनं यस्य, सर्वं-पाप-प्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं, नमामि हरिं परम्॥

॥ इतिं ॥

पुष्पांजलि

—:०:—

यं ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैः,
वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थितयद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥ १ ॥
शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशम् ।
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ॥
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यम् ।
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥ २ ॥
त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥३॥
कस्तूरी तिलकं ललाटपटले वक्षःस्थले कौस्तुभम् ।
नासाग्रे वरमौक्तिकं करतले वेणुः करे कङ्कणम् ॥
सर्वाङ्गे हरिचन्दनं सुललितं कण्ठे च मुक्तावली ।
गोपस्त्रीपरिवेष्टितो विजयते गोपालचूडामणिः ॥ ४ ॥
फुल्लेन्दीवरकान्तमिन्दुवदनं बर्हावतंसं प्रियम् ।
श्रीवत्साङ्कमुदारकौस्तुभधरं पीताम्बरं सुन्दरम् ॥
गोपीनां नयनोत्पलार्चिततनुः गोगोपसंघावृतम् ।
गोविन्दं कलवेणुनादनपरं दिव्यांगभूषां भजे ॥ ५ ॥

मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥ ६ ॥
भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम् ॥७॥
ॐ नमोभगवते वासुदेवाय,सन्तजनास्वादि चरणकमल चिन्म-
करन्दाय भक्तजनमानसनिवासाय श्रीरामचन्द्राय नमः ॥
श्रीकृष्णचन्द्राय नमः, श्रीलक्ष्मीनारायणाय नमः ।
गोविन्दाय नमोनमः, गरुड़ध्वजाय नमोनमः ॥८॥
रागान्धगोपीजनवन्दिताभ्यां योगीन्द्र भृङ्गेन्द्रनिसेविताभ्याम् ।
आताम्रपंकेरुहविभ्रमाभ्यां स्वामिन् पदाभ्यामयमञ्जलिस्ते ॥६॥
अच्युतं केशवं रामनारायणं कृष्ण दामोदरं वासुदेवं हरिम् ।
श्रीधर माधवं गोपिकावल्लभं जानकीनायकं रामचंद्रं भजे! ।१०॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥११॥
नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥१२॥
त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूपम् ॥ १३॥
वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥१४॥
वद्धेनाञ्जलिना नतेन शिरसा गात्रैः सरोमोद्गमैः
कण्ठेन स्वरगद्गदेन नयनेनोद्गीर्णबाष्पाम्बुना ।

नित्यं त्वच्चरणारविन्दयुगलध्यानामृतस्वादिना-
मस्माकं सरसीरुहाक्षसततं सम्पद्यतां जीवितम् ॥१५॥
नमामि नारायणपादपङ्कजं करोमि नारायणपूजनं सदा।
वदामि नारायणनामनिर्मलं स्मरामि नारायणतत्त्वमव्ययम् ॥१६॥
कृष्ण ! त्वदीयपदपङ्कजपञ्जरान्ते,
अद्यैव मे विशतु मानसराजहंसः।
कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते ॥१७॥
सञ्चिन्तयेद् भगवतश्चरणारविन्दम्
वज्राङ्कुशध्वजसरोरुहलांछनाढ्यम्।
उत्तुङ्गरक्तविलसन्नखचक्रवाल-
ज्योत्स्नाभिराहतमहद्धृदयान्धकारम् ॥१८॥
यच्छौचनिःसृतसरित्प्रवरोदकेन
तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत्।
ध्यातुर्मनः शमलशैलविसृष्टवज्रं
ध्यायेच्चिरं भगवतश्चरणारविन्दम् ॥१९॥

———o———

संकीर्तन की सुमधुर ध्वनियाँ

——:०:——

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥१॥

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे।

हे नाथ नारायण वासुदेव ॥२॥

रघुपति राघव राजाराम।

पतित-पावन सीताराम ॥३॥

जय सियाराम जय जय सियाराम

जय सियाराम जय जय सियाराम ॥४॥

जय सीताराम सीताराम सीताराम।

जय सीताराम सीताराम सीताराम ॥५॥

जय हरिगोविन्द ! राधे गोविन्द ॥६॥

श्री मन्नारायण नारायण नारायण।

लक्ष्मीनारायण नारायण नारायण ॥७॥

जय राधे जय राधे राधे जय राधे जय श्रीराधे।

जयकृष्ण जयकृष्ण कृष्णजय कृष्णजय श्रीकृष्ण ॥८॥

जय राधेश्याम राधेश्याम राधेश्याम।

जय राधेश्याम राधेश्याम राधेश्याम ॥९॥

जय राधे जय राधे गोविन्द ।
राधे गोविन्द राधे ॥१०॥
श्रीराम कहो घनश्याम जपो ।
सीताराम रटो राधेश्याम भजो ॥११॥
सियाराम सियावर राम सिया ।
सियाराम सियावर राम सिया ॥१२॥
अरे हरि हरि राम राम सियाराम भजहु ।
सिया राम अरे हरि ॥१३॥
श्रीराम सीताराम सीताराम राम राम ॥१४॥
हरि बोलो हरि बोलो बोलो राम राम ।
श्रीराम श्रीराम श्रीराम सीताराम ॥१५॥
गोविन्द गोपाल गोपीजनवल्लभ ।
गोविन्द गोविन्द गोविन्द गोविन्द ॥१६॥
रामराघव रामराघव रामराघव रक्ष माम् ।
कृष्णकेशव कृष्णकेशव कृष्णकेशव पाहि माम् ॥१७॥
दशरथनन्दन राम भजो रे ।
श्री नन्दनन्दन श्याम जपो रे ॥१८॥
नंदके दुलारे कान्ह हे मुरारि हो ।
कौशल्याके लाल राम रावणारि हो ॥१९॥
राधे गोविन्द भजो वृन्दावनचंन्द्र भजो ।
राधे गोविन्द भजो वृन्दावन चंन्द्र भजो ॥२०॥
यशोदाके नंद भजो आनंद के कंद भजो ।

नंदके आनंद भजो माधव मुकुंद भजो ॥२१॥

राधा राधा कृष्ण कन्हैया, श्रीहलधरके छोटे भैया।

ग्वालनके संग धेनु चरैया, गोपिनके संग रास रचैया ॥२२॥

सीतापते श्रीराम राम। रमापते हरे हरे ॥२३॥

राधावर जय कुंजविहारी। मुरलीधर गोवर्धनधारी ॥२४॥

जय रघुनंदन जय सियाराम

जानकिजीवन सीताराम ॥२५॥

जय यदुनन्दन जय घनश्याम।

रुक्मिणिवल्लभ राधेश्याम ॥२६॥

जय मधुसूदन जय गोपाल।

जय मुरलीधर जय नंदलाल ॥२७॥

जय गोविन्द जय गोपाल। केशव माधव दीनदयाल ॥२८॥

हरि हरि हरि हरि गोविन्द। राधे कृष्ण गोविन्द ॥२९॥

गोपाल कृष्ण-राधे कृष्ण ॥३०॥

जय मीराके गिरिधर नागर, जय तुलसीके सीताराम।

जय नरसीके सांवरिया जय सूरदासके श्रीघनश्याम ॥३१॥

परम मधुर युगल नाम। हरे कृष्ण हरे राम ॥३२॥

जय मोहन जय माधव श्याम।

जय रघुवर जय राजा राम ॥३३॥

दशरथनन्दन अवधकिशोर।

यशुमति सुत जय माखनचोर ॥३४॥

जय रघुवर जय भरत शत्रुघन।

जय लछिमन जय जय हनुमान ॥३५॥

जय कृष्ण हरे गोविन्द हरे ।

जय जय गिरिधर गोपाल हरे ॥३६॥

जय वृन्दावन यमुना धाम । राधा माधव जय घनश्याम ॥३७॥

अवध सरयू सीताराम ॥३८॥

भजो निताई गौर राधेश्याम ।हरे कृष्ण हरे राम ॥३९॥

जय राम हरे जय कृष्ण हरे । मुरलीधर धरणीपाल हरे ॥४०॥

राम राम रघुपति रघुनायक, कृष्ण कृष्ण करुणाकर श्याम ॥४१॥

गोपीपवि गोपाल गदाधर । राधावर लोचन अभिराम ॥४२

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभुनित्यानन्दा ।

हरे कृष्ण हरे राम राधे गोविन्दा ॥४३॥

हरि हरि बोल बोल हरि बोल ।

मुकुन्द माधव गोविन्द बोल ॥४४॥

गोविन्द हरे गोपाल हरे । जय जय प्रभु दीनदयाल हरे ॥४५॥

सीताराम सीताराम सीवाराम बोल ।

राधेश्याम राधेश्याम राधेश्याम बोल ॥४६॥

मन मोहन सुन्दर श्याम हरे ।

घनश्याम हरे घनश्याम हरे ॥४७॥

जय कृष्ण हरे गोविन्द हरे ।

जय जय गिरिधर गोपाल हरे ॥४८॥

सीवाराम हरे सीवाराम हरे । राधेश्याम हरे राधेश्याम हरे ॥४९॥

महामन्त्र है यह जपाकर जपाकर ।

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् ॥५०॥

गोविन्द गोविन्द हरे मुरारे। गोविन्द गोविन्द मुकुन्द कृष्ण।

गोविन्द गोविन्द रथांगपाणे,

गोविन्द दामोदर माधवेति ॥५१॥

राधेकृष्ण श्याम मुरारी।

गोविन्द गोपाल हरे।भज गोविन्द गोपाल हरे ॥५२॥

जय मधुसूदन जय गोपाल।

जय मुरलीधर जय नन्दलाल ॥५३॥

जय मोहन श्याम मुरारी। ब्रजनाथ मुकुन्द विहारी ॥५४॥

गोविन्द जय जय गोपाल जय जय।

राधारमण हरि गोविन्द जय जय ॥५५॥

भज गोविन्दं भज गोविन्दं। भज गोविन्दं मूढमते ॥५६॥

जय राम कृष्ण हरि। गोपाल कृष्ण हरि॥५७॥

श्रीराम रघुवर राम रघुवर राम रघुवर राघवं।

श्रीकृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव केशवं ॥५८॥

जगदीश सच्चिदानन्द हरे। जय राम हरे सुखधाम हरे॥५९॥

सियाराम बोलो सीताराम बोलो।

राधेश्याम बोलो श्याम श्याम बोलो ॥६०॥

दीन दयाल गोपाल हरि।

भज कृष्ण हरि भज कृष्ण हरि ॥६१॥

जय सियाराम जय राधेश्याम।

मुरली मनोहर श्री घनश्याम ॥६२॥

जय जय मोहन श्याम मुरारी ।
जय व्रजसुन्दर गिरिवरधारी ॥६३॥

जय रघुनन्दन जय रघुनन्दन जय रघुनन्दन राम हरे ।
जय यदुनन्दन जय यदुनन्दन जय यदुनन्दन श्याम हरे ॥६४॥

जय श्रीराधे गोविन्द । मुकुन्द माधव गोविन्द ॥६५॥

जय श्रीगोविन्द राधे गोविन्द ।
राधे गोविन्द भजो राधे गोपाल ॥६६॥

मेरा गोविन्द हरि गिरधारी रे ।
मेरा गोविन्द हरि गिरधारी ॥६७॥

गोविन्द हरे गोविन्द हरे गोविन्द हरे गोविन्द हरे ।
गोपाल हरे गोपाल हरे गोपाल हरे गोपाल हरे ॥६८॥

राधाकृष्ण कुंज विहारी । मुरलीधर गोवर्धनधारी ॥६९॥

गोविन्द हरे गोपाल हरे । चित चोर यशोदालाल हरे ॥७०॥

हरे राम हरे राम हरे राम हरे । सीतापति राघव राम हरे ॥७१॥

हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे ।
यादवपति यादव श्याम हरे ॥७२॥

सुखधाम हरे अभिराम हरे । राधावर माधव श्याम हरे ॥७३॥

श्रीकृष्ण कन्हैया श्याम हरे । राधेपति राधेश्याम हरे ॥७४॥

हरे गोविन्द हरे गोपाल । निर्बलके बल दीनदयाल ॥७५॥

जय रघुनन्दन जय सियाराम । जानकिवल्लभ सीताराम ॥७६॥

यदुपति यादव राधेश्याम ।
मुरलीमनोहर श्रीघनश्याम ॥७७॥

भज राधेकृष्ण गोपाल हरि। भज सीताराम कृपाल हरि ॥७८॥

ब्रजमोहन श्याम हरे, मनमोहन श्याम हरे।

यदुनन्दन श्याम हरे, ब्रजनन्दन श्याम हरे ॥७६॥

मुरलीधारी राधेश्याम कृष्ण मुरारी राधेश्याम।

गिरिवरधारी राधेश्यान बांके बिहारी राधेश्याम ॥८०॥

जयराम सदा सुखधाम हरे। रघुनायक सायक चाप धरे ॥८१॥

भज राम राम तू प्यारे। भज कृष्ण कृष्ण तू प्यारे ॥८२॥

गोपिय-बल्लभ राधेश्याम। पतित पावन सीताराम ॥८३॥

सियराम हरे सियराम हरे।

राधेश्याम हरे राधेश्याम हरे ॥८४॥

जय मधुसूदन जय गोपाल, जय मुरलीधर जय नँदलाल ॥८५॥

जय मुरली धर कृष्ण मुरारी जय मनमोहन कुंजविहारी ॥८६॥

रघुनन्दन कोशलचन्द हरे। करुणाकर आनँदकंद हरे ॥८७॥

गोविन्द मुरारे नन्ददुलारे। प्रियतम प्यारे हरे हरे ॥८८॥

राधेकृष्णा राधेकृष्ण कृष्ण कृष्ण राधे राधे।

राधेश्याम राधेश्याम श्याम श्याम राधे राधे ॥८६॥

जय सियराम राधेश्याम। गोपियवल्लभ शोभाधाम ॥६०॥

राम रमापति राम रमापवि। राम रमापति श्री रमणम् ॥६१॥

गोविन्द हरिः गोपाल हरिः। नंदनन्द यशोदालाल हरिः ॥६२॥

हरि हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः।

गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन ॥६३॥

गोविन्द दामोदर माधवेवि, हे कृष्ण हे यादव हे सरवेवि ॥६४॥

दशरथनन्दन सीताराम। अधम उधारन सीताराम ॥९५॥
गोपाल कृष्ण राधेकृष्ण ॥९६॥
हरे मुरारे मधुकैटभारे, गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे।
श्रीराम हरि माधव कृष्ण विष्णो,
मां दीन परिपालय दीनबन्धो ॥९७
माधव गोविन्द हरि, माधव गोविन्द हरि।
माधव गोविन्द हरि माधव ॥९८॥

—–०—–

श्रीशंकरजीकी नाम ध्वनियाँ

हर शिवशंकर गौरीशं वन्दे गंगाधरमीशम्।
रुद्रं पशुपतिमीशानं कलये काशीपुरिनाथम् ॥९९॥
जय शंभो, जय शंभो शिव गौरीशंकर जय शंभो।
सांबसदाशिव सांबसदाशिव सांबसदाशिव
सांब सदाशिव ॥१००॥
भज भोलानाथ भोलानाथ भोलानाथ ॥१०१॥
शंभवे नमः शंभवे नमः। शूलिने नमः शंभवे नमः ॥१०२
हर हर भोला भोला भोला।
शिव हर भोला बम बम, भोला ॥१०३॥
शिव शिव शिव शिव रामा। कहो मन श्री घनश्यामा ॥१०४॥
शिव शिव शंकर भोला, कि शिव हर।
भोला हो रामा। हर हर भोला ॥१०५॥

हर हर हर महादेव । शंकर शिव भोला पार्वती ॥१०६॥

शंकर शिव बं बं भोला, शंकर शिव ।

शंकर शिव हर हर भोला, शंकर शिव ॥१०७॥

शिव शिव शिव शिव गाइये हो । शिव शिव शिव शिव ॥१०८॥

जयति शिवा शिव जानकि राम ।

जय रघुनन्दन राधेश्याम ॥१०९॥

शिव हर बं बं हर हर बं बं ॥११०॥

कहु भोला शंकर भोला रे । हर बं बं भोला भोला ॥१११॥

भजु भोला भोला भोला रे । हर भोला बं बं भोला ॥११२॥

हर हर हर हर हर हर कहिये ।

शिव शिव शिव शिव शिव शिव भजिये ॥११३

ॐ नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय ।

ॐनमः शिवाय ॐ नमः शिवाय ॥११४॥

अगड़ बं अगड़ बं बाजै डमरू। नाचै सदाशिव जगद्गुरू॥११५॥

जय गिरिजापति जय महादेव ।

जय शम्भो जय जय महादेव ॥११६॥

साम्बसदाशिव साम्बसदाशिव,

साम्बसदाशिव जयशंकर ॥११७॥

हर हर शंकर दुखहर सुखकर,

अघतम हर हर हर शंकर ॥११८॥

जय शिव काशी जय शिव काशी, शिव काशी कैलाशपती ।

जय अविनाशी जय सुखराशो,शिव काशी कैलाशपति ॥११९॥

जय शिव शम्भो जय शिव शम्भो जय शिव शम्भो हरे हरे ।
जय त्रिपुरारी जय त्रिपुरारी जय त्रिपुरारी हरे हरे ॥१२०॥
जय भोलाभंडारि हरे । जय शंकर त्रिपुरारि हरे ॥१२१॥
जय उमाकाँत त्रिपुरारि हरे, जयजय शिव जगदाधार हरे ।१२२।
आशुतोष हर शिव शंकर । उमाकाँत मृड गंगाधर ॥१२३॥

श्रीशशिशेखरं वन्दे, अहिगणभूषणं वन्दे ।
नन्दीवाहनं वन्दे, भय-पुरदाहनं वन्दे ॥१२४॥

देवी आदि की स्फुट ध्वनियाँ

जय हनुमान जय जय हनुमान ।
जय हनुमान जय जय हनुमान ॥१२५॥
जय बजरंग जय बजरङ्ग ॥१२६॥
जय दुर्गे जय जय दुर्गे ॥१२७॥
पतित पावनी गंगे भव-भय हारिणी गंगे ॥१२८॥
जय गंगे जय गंगे गंगे जय गंगे जय श्री गंगे ॥१२९॥
जय गंगे जय गंगे गंगे तरलतरंगिनि जय गंगे ।
शुभ्र सुअंगे जय गंगे शंकर संगे जय गंगे ।
भवभय भंगे जय गंगे कृतनन चंगे जय गंगे ॥१३०॥
गणपति गौरी शंकर श्याम । राधेकृष्ण सीताराम ॥१३१॥
दुर्गंदुर्गति नाशिनि जय जय, काली काल विनाशिनि जय जय ।१३२।
उमा रमा ब्रह्माणी जय जय । राधा सीता रुक्मिणि जय जय।१३३
ब्रह्मा विष्णु महेश सती । गंगा यमुना सरस्वती ॥१३४॥

जय शचिनन्दन गौर गुणाकर ।
प्रेम परस मणि भाव रसागर ॥१३५॥
मंगलमूरति मारुतिनन्दन ॥१३६॥
राधावल्लभ हित हरिवंश । श्रीवृन्दावन श्रीवनचन्द ॥१३७॥
जय दुर्गा जय जय गणनायक ।
जय हनुमान जय मंगल दायक ॥१३८॥

—:o:—

कीर्तनके भेद

—

संकीर्तनं भगवतो जगदीश्वरस्य ।
भक्तानुकम्पनपरस्य कृपार्णवस्य ॥
दीनार्तिदुःखदलनस्य सुरोत्तमस्य ।
सांसारिकं सकलतापमपाकरोति ॥

भगवान्के नाम तथा गुणोंका कथन करना उच्चारण करना अथवा वर्णन करना इसे ही कीर्तन कहते हैं। कीर्तनके दो भेद हैं। एक वैयासकी पद्धति और एक नारदीय पद्धति। पुस्तक लेकर भगवान्के गुण और लीलाके कथन करनेको वैयास-

को कीर्तन कहते हैं। इसमें एक वक्ता आसनपर बैठकर कथा कहते हैं। शेष श्रवण करते हैं। ताल स्वरके साथ वाद्यों पर जो कीर्तन किया जाता है उसे नारदीय कीर्तन कहते हैं। उसके दो भेद हैं। एक नाम कीर्तन, एक पद कीर्तन। केवल भगवान् के नामोंका ही ताल स्वरसे उच्चारण करना यह नाम संकीर्तन है और भगवान्के रूप गुण तथा चरित्रोंका पद्यमें गान करना यह पद कीर्तन है। नाम संकीर्तनके भी दो भेद हैं एक तो अकेले ही एकान्तमें भगवान्के नामोंका जोर जोरसे कीर्तन करना दूसरा सबके साथ मिलकर ताल स्वर और वाद्यों के साथ नाम संकीर्तन करना। यह दो प्रकारसे होता है एक तो बैठकर एक पहिले बोलता है शेष सभी उसके साथ बोलते हैं। दूसरा, खड़े होकर, सभी एक साथ कीर्तन करते हैं और प्रेम में नृत्य कीर्तन करते २ विभोर होते हैं। इसी प्रकार पद कीर्तन के भी दो भेद हैं, पहिला तो यह कि एक वक्ता खड़े होकर पद्यों में और बीच बीचमें गद्य बोलते हुए किसी आख्यायिका कहानीके द्वारा भगवान्के गुणोंका वर्णन करते हैं। भक्तों के उदाहरण देकर भगवान्की कृपा, भक्तवत्सलताका गान करते हैं। ऐसा कीर्तन महाराष्ट्र देशमें अधिक होता है। दूसरा प्रकार यह है कि एक प्रधान वक्ता पद कहता है उसे ही शेष सब दुहराते हैं। इस प्रकार संकीर्तनके अनेक भेद हैं।

यह सब होते हुए भी उनमें नामध्वनि और पदोंका ही समावेश होता है। हमने भगवन्नाम सम्बन्धी कुछ सुमधुर

ध्वनियाँ पीछे दी हैं। यहाँ संकीर्तनके योग्य सुन्दर सुन्दर कुछ पद दिये जाते हैं। आशा है पाठकोंको इससे लाभ होगा। नाम संकीर्तन और पद संकीर्तन सभी रुचिके अनुसार कर सकते हैं। किन्तु सामान्य नियम ऐसा होता है, कि विशेष भक्त समुदायमें केवल नाम संकीर्तनकी ही प्रधानता होनी चाहिये। अन्तमें कुछ पद भी हो सकते हैं और जब एकान्तमें थोड़ेसे सत्संगी बैठ कर सत्संग करें तो वहाँ पद संकीर्तनकी प्रधानता होनी चाहिये। नाम संकीर्तनका रस समुदायके साथ ही मिलता है और एकान्तमें पद संकीर्तनका रसास्वादन करना चाहिये। जब सर्व साधारणमें पद संकीर्तन और संगीतकी प्रधानता हो जाती है तब वह संकीर्तन मंडली न रहकर संगीत गोष्ठी हो जाती है और फिर वह हमें लक्ष्य से गिरा देती है। अतः समाजमें नाम ध्वनि हो और सब मिलकर बोलें। एकान्तमें पद गायन हो।

अब यहाँ कुछ सुन्दर २ पद दिये जाते हैं।

पद संकीर्तन

(१) भजन

तू दयालु, दीन हौं, तू दानी, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुंजहारी ॥१॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो ?
मो समान आरति नहिँ, आरतिहर तोसो ॥२॥
ब्रह्म तू, हौं जीव, तू है ठाकुर, हौं चेरो।
तात-मात-गुरु-सखा तू सब विधि हितु मेरो ॥३॥
तोहिं मोहिं नाते अनेक मानिये जो भावै।
ज्यों त्यों 'तुलसी, कृपालु ! चरनसरन पावै ॥४॥

(२) रागधनाश्री

यह बिनती रघुबीर गुसाई
और आस विस्वास- भरोसो, हरौ जीव जड़ताई ॥१॥
चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु, रिधि-सिधि, बिपुल बड़ाई।
हेतु रहित अनुराग राम-पद, बढ़ै अनुदिन अधिकाई ॥२॥
कुटिल करम लै जाहिं मोहि जहँ, जहँ अपनी बरिआई।
तँ वह जनि छिन छोह छाँड़ियो, कमठ- अंडकी नाईं ॥३॥
या जग में जहँ लगि या तनु की, प्रीत प्रतीत सगाई।

ते सब 'तुलसीदास' प्रभु ही सों, होहिं सिमिटि इक ठाईं ॥४॥

[३]

अंखिया हरि-दरसनकी प्यासी ।
देख्यो चाहत कमल नैन को, निसिदिन रहत उदासी ॥१॥
केसर तिलक मोतिनकी माला, वृन्दावनके बासी ।
नेह लगाय त्यागि गये तृन सम, डारि गये गल-फाँसी ॥२॥
काहूके मनकी को जानत, लोगनके मन हाँसी ।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे दरस बिन, लैहों करवत कासी ॥३॥

[४] राग देवगन्धार

बसो मोरे नैननमें नन्दलाल ॥
मोहनी मूरति साँवरि सूरवि नैना बने बिसाल ।
अधर सुधारस मुरली राजत उर बैजन्ती-माल ॥१॥
छुद्रघंटिका कटि वट सोभित नूपुर सबद रसाल ।
'मीरा' प्रभु संतन सुखदाई भगतबछल गोपाल ॥२॥

[५] लावनी

प्रिय प्राणनाथ मनमोहन सुन्दर प्यारे !
छिन हूँमति मेरे होहु हगनते न्यारे ॥
घनश्याम गोप गोपीपति गोकुलराई,
निज प्रेमीजन हित नित नित नवसुखदाई ।
प्राणहूँते प्यारे प्रियतम मीत कन्हाई,
वृन्दावन-रक्षक व्रज सरवस बल भाई ॥
श्रीराधानायक यशुदानन्द दुलारे !

छिनहूँ मति मेरे होहु दृगनते न्यारे ॥१॥
तव दरशन विनु तन रोम रोग दुख पागै,
तव सुमिरन विनु यह जीवन विष-सम लागै।
तुम्हरे संयोग बिनु तन वियोग-दुख दागै,
अकुलात प्रान जब कठिन मदन-मन जागै॥
मम दुख जीवनके तुम हो इक रखवारे,
छिनहूँ मवि मेरे होहु दृगनते न्यारे॥२॥
तुमही मम जीवनके अवलम्ब कन्हाई,
तुम बिन सब सुखके साज परम दुखदाई।
तुम देखे ही सुख होव न और उपाई,
तुम्हरे बिनु सब जग सूनो परव लखाई॥
हे जीवनधन! मेरे नयनोंके तारे!
छिनहूँ मवि मेरे होहु दृगनते न्यारे॥३॥
तुम्हरे बिनु इक क्षण कोटि कलपसम भारी,
तुम्हरे बिनु स्वर्गहु महा नरक दुखकारी।
तुम्हरे संग बनहूँ घरसों बडो बनवारी,
हमरे तो सब कुछ तुमही हो गिरधारी॥
'हरिचन्द' हमारो राखो मान दुलारे!
छिनहूँ मति मेरे होह दृगनते न्यारे॥४॥

[६]

सुनेरी मैंने निर्वलके वल राम।
पिछली साख भरूँ संतनकी अड़े संवारे काम॥

जब लगि गज बल अपन्यो बरत्यो नेक सर्यो नहिं काम ।
निर्बल ह्वै बल राम पुकार्यो आये आधे नाम ।
द्रुपद सुता निर्बल भई तादिन तजि आये निज धाम ।
दुःशासन की भुजा थकित भई वसन रूप भये श्याम ॥
जप बल तप बल और बाहुबल चौथा है बलदाम ।
सूर किशोर कृपातें सब बल हारे को हरिनाम ॥

७ राग बागेश्री

जो हम भले बुरे तौ तेरे ।
तुम्हें हमारी लाज बड़ाई विनती सुनु प्रभु मेरे ।
सब तजि तुव सरनागत आयो, निजकर चरन गहे रे ।
तुव प्रताप बल बदत न काहू, निडर भये घर चेरे ॥
और देव सब रंक भिखारी, त्यागे बहुत अनेरे ।
सूरदास प्रभु तुम्हरि कृपातें पाये सुखजु घनेरे ॥

८ राग कल्याण

जैसे राखौ तैसेहि रहौं ।
जानत हौ सब दुख सुख जनकौ मुख करि कहा कहौं ॥
कबहुंक भोजन देतकृपा करि कबहुंक भूख सहौं ।
कबहुंक चढ़ौं तुरंग महागज कबहुंक भार बहौं ॥
कमलनयन घनश्याम मनोहर अनुचर भयो रहौं ।
सूरदास प्रभु भगत कृपानिधि तुम्हरे चरन गहौं ॥

६ राग केदारा

बन्दौं चरन सरोज तुम्हारे ।
जे पद पदुम सदासिवके धन, सिन्धु सुता उरते नहिं टारे ॥
जे पद पदुम परसि भई पावन, सुरसरि दरस कटत अघ भारे ।
जे पद पदुम परसि ऋषि घरनी, बलि नृग, व्याध, पतितबहु तारे ॥
जे पद पदुम

जे पद पदुम रमत बृन्दावन, अहि सिर धरि अगनित रिपु मारे।
जे पद पदुम परसि बृज भामिनि, सरबसु दै सुत सदन बिसारे॥
जे पद पदुम रमत पांडव दल, दूत भये सब काज संवारे।
सूरदास तेई पद पंकज, त्रिविधताप दुख हरन हमारे॥

१० राग नट

प्रभु मेरे अवगुन चित न धरो।
समदरसी है नाम तिहारो अपने पनहिं करो॥
इक लोहा पूजामें राखत इक घर बधिक परो।
यह दुविधा पारस नहिं जानत कंचन करत खरो॥
एक नदिया एक नार कहावत मैलो नीर भरो।
जब मिलिकै दोउ एक बरन भये सुरसरि नाम परो॥
एक जीव इक ब्रह्म कहावत सूरस्याम झगरो।
अबकी वेर मोहिं पार उतारो नहिं पन जात टरो॥

११ राग आसावरी

दीनन दुख हरन देव, सन्तन सुखकारी॥
अजामील, गीध, व्याध, इनमें कहो कौन साध,
पंछिहू पद पढ़ात, गनिका सी तारी॥
ध्रुवके सिर छत्र देत, प्रह्लाद कहं उबार लेत।
भगत हेत बांध्यो सेत लङ्कपुरी जारी॥
तंदुल देत रीझ जात, साग-पात सों अघात,
गिनत नहीं जूठे फल, खट्टै-मिट्ठे-खारी॥
गजको जब ग्राह ग्रस्यो, दुस्सासन चीर खस्यो,
सभा बीच कृष्ण, द्रौपदी पुकारी॥
इतनेमें हरी आय गये, बसनन आरूढ़ भये,
सूरदास द्वारे ठाढ़ो आंधरो भिखारी॥

[१२]

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जिन तनु दियो ताहि बिसरायो, ऐसो नमक हरामी॥
भरि भरि उदर विषयको धायो, जैसे सूकर ग्रामी।
हरिजन छाँडि हरि विमुखनकी निशि दिन करत गुलामी॥
पापी कौन बड़ो जग मौते सब पतितनमें नामी।
सूर पतितको ठौर कहाँ है तुम बिन श्रीपति स्वामी॥

१३

भज मन राम चरण सुखदाई।
जिहि चरननसे निकसी सुरसरि संकर जटा समाई॥
जटासंकरी नाम परो है त्रिभुवन तारन आई।
जिहि चरननकी चरन पादुका भरत रहे लव लाई॥
सोई चरन केवट धोय लीने तब हरि नाव चलाई।
सोई चरन संतन जन सेवत सदा रहै सुखदाई॥
सोई चरन गौतम ऋषि नारी परसि परमपद पाई।
दंडक वन प्रभु पावन कीनो ऋषियन त्रास मिटाई॥
सोई प्रभु त्रयलोकके स्वामी कनक मृगा संग धाई।
रिपुको अनुज विभीसन निसिचर परसत लंका पाई॥
सिव सनकादिक अरु ब्रह्मादिक सेस सहस मुख गाई।
तुलसिदास मारुत सुतकी प्रभु निज मुख करत बड़ाई॥

(१४) राग धनाश्री

जाऊँ कहाँ तजि चरण तुम्हारे।
काको नाम पतित पावन जग, केहि अति दीन पियारे॥
कौन देव बराइ बिरद हित, हठि हठि अधम उधारे।
गनिका, गीध, पखान बिटप जड़, जवन कवन सुर तारे॥

देव दनुज मुनि नाग असुर सब, माया बिवस बिचारे।
तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु, कहा अपनपौ हारे॥

(१५)

जानकी जीवन की बलि जैहौं।
चित कहै रामसीय पद परि हरि, अब न कहूं चलि जैहौं॥
उपजी उर प्रतीति सपनेहूं सुख, प्रभुपद बिमुख न पैहौं।
मन समेत या तनके बासिन्ह इहै सिखावन दैहौं॥
स्रवननि और कथा नहिं सुनि हौं रसना और न गैहौं।
रोकि हौं नैन बिलोकत औरहिं, सीस ईस ही नैहौं॥
नातो नेह नाथ सों करि सब, नातों नेह बहैहौं।
यह छर भार ताहि तुलसी जग, जाको दास कहैहौं॥

[१६] राग धनाश्री

मेरो मन हरि जू पठ न तजै।
निसि दिन नाथ देऊं सिख बहु विधि, करत सुभाउ निजै।
ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै॥
ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सठ, पुनि खल पतिहिं भजै॥
लोलुप भ्रमत गृहपसु ज्यों जहं तहं, सिर पदत्रान बजै।
तदपि अधम बिचरत तेही मार, कबहुं न मूढ़ लजै॥
हौं हार्‌यों करि जतन बिबिध बिध, अतिसै प्रबल अजै।
तुलसी दास बस होइ तबहिं जब, प्रेरक प्रभु बरजैं॥

[१७] राग भैरव

राम जबु, राम जपु, राम जपु बबारे।
घोर-भव-नीरनिधि, नाम निज नावरे॥
एक ही साधन सब रिद्धी सिद्धि साधरे।
ग्रसे कलि रोक जोग, संजम समाधि रे॥

भलो जो है, पोच जो हैं दाहिनो जो बामरे।
राम नाम ही सों अन्त, सब ही को कामरे॥
जग नभ-बाटिका रही है, फलफूलिरे।
धुवां कैसो धौरहर देखि, तू न भूलिरे॥
राम नाम छांड़ि जो, भरोसो करै और रे।
तुलसी परोसो त्यागि, मांगै कूर कौर रे॥

[१८] राग गौरी

श्री रामचन्द्र कृपालु भज मन हरन भव भय दारुणं।
नवकुञ्जलोचन, कञ्जमुख, करकुञ्ज, पदकञ्जारुणं॥
कन्दर्प अगणित अमित छवि नव नील नीरद सुन्दरं।
पट पीत मानहुँ तड़ित रुचि शुचि नौमि जनक सुतावरं॥
भज दीनबन्धु दिनेश दानव दैत्यवंश निकन्दनं।
रघुनन्द आनन्दकन्द कोशलचन्द्र दशरथनन्दनं॥
शिर मुकुट कुण्डल तिलकचारु उदार अंग विभूषणं।
आजानुभुज शरचापधर संग्रामजित खरदूषणं॥
इति वदति तुलसीदास शंकर शेष मुनि मन रंजनं।
मम हृदयकञ्ज निवास करु कामादि खलदल गञ्जनं॥

[१९]

प्यारे दर्शन दीज्यो आय, तुम बिना रह्यो न जाय।
जल बिन कमल चन्द्र बिन रजनी,
ऐसे तुम देखे बिन सजनी।
आकुल व्याकुल फिरूं रैन दिन,
विरह कलेजो खाय॥
दिवस न भूख नींद नहिं रैना,
मुखसूं कहत न आवै बैना।

कहा कहूं कुछ कहत न आवें,
मिलकर तपन बुझाय ॥
क्यों तरसावो अन्तरयामी,
आय मिलो किरपा कर स्वामी ।
मीरा दासी जनम जनम की,
पड़ी तुम्हारे पाय ॥

[२०]

गिरधारी लाल, म्हांने चाकर राखो जी ।
चाकर रहसूं, बाग लगासूं, नित उठ दरसन पासूं ।
वृन्दावन की कुञ्ज गलिन में, गोविन्द को गुन गासूं ॥
चाकरी में दरशन पाऊँ सुमिरन पाऊँ खरची ।
भाव भगति जागीरी पाऊँ, तीनों बातें सरसी ॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, गल वैजन्ती माला ।
वृन्दावन में धेनु चरावे, मोहन मुरली वाला ॥
ऊंचे ऊंचे महल बनाऊं, विच विच राखूं बारी ।
सांवरियां के दर्शन पाऊं पहिर कुसूंमल सारी ॥
जोगी आया जोग करन कूं, तप करने सन्यासी ।
हरि भजने को साधू आये, वृन्दावन के बासी ॥
मीराके प्रभु गहर गंभीरा, हृदय रहो जी धीरा ।
आधी रात प्रभु दर्शन दीन्हों, प्रेम नदी के तीरा ॥

[२१] राग खमाच

भजो रे भैया राम गोविन्द हरी ।
जप तप साधन कछु नहि लागत, खरचत नहिं गठरी ।
संतत संपत सुख के कारन, जासों भूल परी ॥
कहत कबीरा राम न जा मुख, ता मुख धूल भरी ॥

[२२] विहाग

करू मन, नन्दनंदन को ध्यान।
यह अवसर तोहि फिर न मिलैगो,
मेरौ कह्यो अब मान॥
घूंघर वारी अलकैं मुख पै,
कुन्डल झलकत कान।
नारायन अलसाने नैना,
झूमत रूप निधान॥

[२३] युगल कीर्तन

जय राधे जय राधे राधे जय राधे श्री राधे।
जय कृष्ण जय कृष्ण कृष्ण जय कृष्ण जय श्री कृष्ण॥
श्यामा गोरी नित्य किशोरी प्रीतम जोरी श्री राधे।
रसिक रसीलो छैल छबीलो गुण गरबीले श्री कृष्ण॥
रास विहारिणि रस विस्तारिणि पिय उर धारिण श्रीराधें।
नव-नव रंगी नवल त्रिभंगी श्याम सुअंगी श्री कृष्ण।
प्राण पियारी रूप उज्यारी अति सुकुमारी श्री राधे॥
मैन मनोहर महा मोदकर सुन्दर वरतर श्री कृष्ण॥
शोभा सैनी राजिव मैनी कोकिल बैनी श्री राधे।
कीरतिवंता कामिनिकंता श्रीभगवन्ता श्रीकृष्ण॥
चन्दा बदनी कुन्दा रदनी शोभा सदनी श्रीराधे।
परम उदारा प्रभा अपारा अति सुकुमारा श्रीकृष्ण॥
हंसा गमनी राजित रमनी क्रीड़ा कमनी श्रीराधे।
रूप रसाला नैन विशाला परम कृपाला श्रीकृष्ण॥
कंचनबेली रतिरसलेली अति अलबेली श्रीराधे।
सब सुखसागर सब गुणआगर रूप उजागर श्रीकृष्ण॥

रमणी रम्या वरुतर तन्या गुण आगम्या श्रीराधे ।
धाम निवासी प्रभा प्रकाशी सहस सुहासी श्रीकृष्ण ॥
शक्त्याह्लादिनि अति प्रिय वादिन उरउन्मादिनि श्रीराधे ।
अंग अंग टोना सरस सलोना सुभग सुठौना श्रीकृष्ण ॥
राधा नामिनि गुण अभिरामिनि हरिप्रिया स्वामिनि श्रीराधे।
हरे हरे हरि हरे हरे हरि हरे हरे हरि श्रीकृष्ण ॥

[२४] कुञ्जविहारी की आरती

आरती कुञ्जविहारी की । गिरधर कृष्ण मुरारी की ।
आरती कुंज विहारी की । गिरधर कृष्ण मुरारी की ।
गले में वैजन्ती माला, बजावे मुरली मुरली वाला ॥
श्रवण में कुंडल जगपाला । नंद के नंदन, नंदलाला ॥
घन सम अंग कान्ति काली । राधिका चमक रही विजली ।
भ्रमर सम अलक, कस्तूरी तिलक
चन्द्र सी झलक । ललित छवि राधा प्यारी की ॥
कनक मय मौर मुकुट विलसैं । देवता दर्शन को तरसैं ॥
गगन से सुमन बहुत बरसैं । चन्द्रिका शरद ऋतु दरसै ॥
चौफेर गोप ग्वाल धेनू । बाजी रही यमुना तट वेणु ॥
हसतमुखमंदवरदसुखकद,छुटत भावफंदप्रीति है गोपकुमारीकी ।
प्रीति घृत वसन चरण राधा । रागि रही मोरी अनुराधा ॥
जहाँ से निकली भव गंगा । श्री जगमल हरणी गंगा ॥
रग से दग हुआ मैं दास । श्रीधर सदा चरण के पास ॥
बजत मोरचंग और मिरदंग ।
ग्वालिनी संग लाज रख सब ब्रजनारी की ॥

[२५] आरती

ॐ जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे ।

भक्त जनन के संकट छिन में दूर करो ॥
जो ध्यावे फल पावे, दुख विनशे मनका ।
सुख संपति घर आवे कष्ट मिटे तनका ॥
मात पिता तुम मेरे शरण गहूँ किसकी ।
तुम बिन और न दूजा आस करूं जिसकी ॥
तुम पूरण परमात्मा तुम अन्तरयामी ।
पारब्रह्म परमेश्वर तुम सब के स्वामी ॥
तुम करुणा के सागर तुम पालन करता ।
मैं मूरख खल कामी कृपा करो भरता ॥
तुम हो एक अगोचर सबके प्राण पति ।
किस विधि मिलूं गुसाईं तुमको मैं कुमती ॥
दीनबन्धु दुख हरता ठाकुर मेरे ।
अपने हाथ उठाओ द्वार पड़ा तेरे ॥
विषय विकार मिटाओ पाप हरो देवा ।
श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ सन्तनकी सेवा ॥

। श्री हरि ।

श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी की लिखित
पुस्तकों की सूची इसे पत्ते से बुलवाइये ।
संकीर्तन भवन
झूसी प्रयाग

मुद्रक:— जे० पी० मालवीय
सेन्ट्रल प्रिन्टिंग प्रेस
५० खुशाल पर्वत
इलाहाबाद

श्री हरिः

हिन्दू धर्म, संस्कृति हिन्दी भाषा का सरस

सुबोध और सरल सर्वोपयोगी

बृहद ग्रन्थ

भागवती कथा

(लेखक श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी)

श्री ब्रह्मचारी जी हिन्दी भाषा में एक अत्यंत ही उपादेय बृहद् ग्रन्थ लिख रहे हैं। इसमें समस्त, वेद, शास्त्र, पुराण तथा धर्म ग्रन्थों का सार सिद्धान्त रहेगा। पुराणों की चुनी हुई सरल, रोचक, शिक्षाप्रद कहानियाँ बड़ी ही ललित भाषा में लिखी जा रही हैं। यह ग्रन्थ खण्डशः प्रकाशित हो रहा है। अब तक इसके अट्ठाईस खण्ड प्रकाशित होचुके हैं। प्रति मास लगभग ढाई सौ पृष्ठ का प्रायः एक खण्ड प्रकाशित होता है, जिसमें एक रंगीन चित्र ७-८ सादे चित्र भी रहते हैं। एक खण्ड का मूल्य १।) और ।≈)। डाक व्यय पृथक। जो सज्जन १५≈) भेज कर स्थाई ग्राहक बन जायगे, उन्हें सभी खण्ड रजिस्ट्री से भेजे जायँगे। पूरा ग्रन्थ लगभग १०८ भागों में प्रकाशित होगा। प्रथम खण्ड पढ़कर आप इसकी उपयोगिता समझ जायंगे। सभी श्रेणी के विद्वानों ने इस ग्रन्थ की भूरि भूरि प्रशंसा की है, विशेष विवरण जानने के लिए पाँच आने के टिकट भेज कर भागवती कथा की बानगी, मंगावे। सूची पत्र बिना मूल्य मंगाइये।

सब प्रकार के पत्र व्यवहार का पता—

व्यवस्थापक—संकीर्तनभवन, झूसी (प्रयाग)

मुद्रक—सेन्ट्रल प्रिन्टिङ्ग प्रेस, ५० खुशहाल पर्वत इलाहाबाद